मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' में चित्रित स्त्री

(एम. फिल. लघु शोध-प्रबंध)

सिक्किम विश्वविद्यालय

मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.) उपाधि की आंशिक परिपूर्ति के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

रंजू कुमारी गुप्ता

हिंदी विभाग
भाषा और साहित्य संकाय
सिक्किम विश्वविद्यालय
गंगटोक - 737102

मार्च – 2017

मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' में चित्रित स्त्री

(एम. फिल. लघु शोध-प्रबंध)

अनुसंधित्सु

रंजू कुमारी गुप्ता

पं. सं. 15/M.Phil/HND/02, दिनांक 16/05/2016

हिंदी विभाग

भाषा और साहित्य संकाय

सिक्किम विश्वविद्यालय

गंगटोक - 737102

मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' में चित्रित स्त्री

(एम. फिल. लघु शोध-प्रबंध)

शोध- निर्देशक
दिनेश साहू
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग

अनुसंधित्सु
रंजू कुमारी गुप्ता
पं.सं. 15/M.Phil/HND/02

हिंदी विभाग
भाषा और साहित्य संकाय
सिक्किम विश्वविद्यालय
गंगटोक - 737102

मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' में चित्रित स्त्री

अनुसंधित्सु

रंजू कुमारी गुप्ता

पं. सं. 15/M.Phil/HND/02, दिनांक 16/05/2016

द्वारा

सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक, के हिंदी विभाग में मास्टर ऑफ फिलॉसफी
(एम.फिल.) उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम : रंजू कुमारी गुप्ता

शिक्षा : एम. ए. (हिंदी)

विभाग : हिंदी

लघु शोध-प्रबंध का शीर्षक : **मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' में चित्रित स्त्री**

प्रवेश शुल्क का भुगतान की तिथि : 24.07.2015

शोध प्रस्ताव की संतुति :

(i) पंजीकरण संख्या : 15/M.Phil/HND/02

(iii) पंजीकरण तिथि: 16.05.2016

अध्यक्ष/प्रभारी
हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय
गंगटोक

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन : **i-iv**

प्रथम अध्याय : स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और मैत्रेयी पुष्पा **1-36**

1 .क. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास

1. ख. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

1. ग. मैत्रेयी पुष्पा के व्यक्तित्व एवं उनके उपन्यास

द्वितीय अध्याय : स्त्री जीवन के विविध रूप **37-56**

2. क. अर्थ एवं स्वरूप

2. ख. भारतीय समाज और स्त्री

2. ग. समकालीन समाज और स्त्री

तृतीय अध्याय : 'चाक' में वर्णित स्त्री जीवन **57-109**

3. क. चाक का परिचय : कथा-वस्तु, प्रमुख पात्र, समस्याएँ, उद्देश्य, भाषा-शैली

3. ख. स्त्री की सामाजिक स्थिति

3. ग. स्त्री की आर्थिक स्थिति

3. घ. स्त्री की पारिवारिक स्थिति

चतुर्थ अध्याय : 'चाक' में चित्रित स्त्री एवं मैत्रेयी पुष्पा की रचना-दृष्टि **110-132**

4. क. स्त्री की वेदना

4. ख. प्रतिरोध का स्वर

4. ग. मैत्रेयी पुष्पा की स्त्री दृष्टि का वैशिष्ट्य

उपसंहार **133-138**

संदर्भ ग्रंथ सूची **139-142**

प्राक्कथन

प्रथम अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और मैत्रेयी पुष्पा

द्वितीय अध्याय

स्त्री जीवन के विविध रूप

तृतीय अध्याय

‘चाक’ में वर्णित स्त्री जीवन

चतुर्थ अध्याय

‘चाक’ में चित्रित स्त्री एवं मैत्रेयी

पुष्पा की रचना-दृष्टि

उपसंहार

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

प्राक्कथन

उपन्यास आधुनिक युग की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। मानव चरित्रों पर प्रकाश डालना और उसके रहस्य को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है। स्त्री अनंत काल से समाज की शक्ति और साहित्य का मुख्य केंद्र रही है। आज समाज के बदलते मानदंड, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवस्थाओं का विकास तथा नवीन आदर्शों की स्थापना में स्त्री की महत्वपूर्ण भूमिका है। वर्तमान समाज के बदलते जीवन-मूल्यों में जहाँ पुरुष अपने व्यक्तिगत विकास के लिए प्रयत्नशील है, वहीं स्त्री भी अपनी व्यक्तिगत आजादी एवं पहचान को सुरक्षित रखना चाहती है। सदियों से समाज में व्यवस्था, शांति और ऐश्वर्य की स्थापना में स्त्री का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भले ही हम आधुनिकता की बात करें पर सत्य तो यह है कि इंसान के चाँद पर पैर रखने के बावजूद भी हम अपने संस्कारों और रूढ़ियों को छोड़ नहीं पा रहे हैं और स्त्री आधुनिकता तथा रूढ़ समाज के बन्धनों से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं।

हिंदी साहित्य की महिला उपन्यासकारों ने स्त्री की पीड़ा, छटपटाहट और दयनीय स्थिति को पहचाना और उसे अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति दी। हिंदी की महिला उपन्यासकारों में मैत्रेयी पुष्पा का विशिष्ट स्थान है। नब्बे के दशक में उभरी और प्रतिष्ठित हुई कथा लेखिका मैत्रेयी पुष्पा के सभी उपन्यास स्त्री संवेदनाओं को उकेरने में समर्थ हैं। इस दृष्टि से उनका उपन्यास 'चाक' महत्वपूर्ण है। इस उपन्यास में स्त्री के प्रति सामंती समाज के भीतर व्याप्त हिंसा और स्वार्थों की टकराहट की कहानी है। मैत्रेयी पुष्पा इन बिंदुओं को एक कथाकार की निगाह से परखती है और पात्रों के आचार-विचार और सोच के रूप में प्रभावशाली ढंग से प्रकट करती हैं। इसमें एक ऐसी ग्रामीण स्त्री पात्र 'सारंग' की कहानी है जिसका जीवन चाक की भाँति रोजाना नये रूप में परिवर्तित होती रहती है। लेखिका ने उसके जीवन को चाक के साथ जोड़ा है। जिस तरह चाक घूमता है और मिट्टी को एक नए रूप में ढालता है, ठीक इसी प्रकार इस उपन्यास की नायिका भी अपने जीवन को एक नया रूप देने में जुटी है। चाक सिर्फ 'सारंग' की नहीं बल्कि हर उस स्त्री की कहानी है जो पुरुष सत्तात्मक समाज द्वारा बनायीं गयी घिसी-पिटी परिपाटी पर नहीं चल पाती और अनेक विरोध के बावजूद भी पुरुषसत्ता के बरक्स अपनी एक अलग पहचान बनाती हैं। सारंग समाज की सभी स्त्रियों के लिए एक आदर्श रूप प्रस्तुत करती है।

हिंदी साहित्य में स्त्री जीवन पर अब तक बहुत कुछ लिखा जा चुका है। वर्तमान साहित्य में यह एक चर्चित और जरुरी विषय है। आज 'स्त्री प्रश्न' एक गंभीर चिंता और आन्दोलन का रूप ले चुका है। पहले की अपेक्षा वर्तमान स्त्री मुक्ति की चेतना और स्त्री पराधीनता संबंधित विचार न सिर्फ व्यापक हुए, बल्कि गहरे और जटिल भी हुए हैं। नई आर्थिक, सामाजिक और तकनीकी विकास पर आधारित जीवन शैली के परिणामस्वरुप स्त्री पराधीनता और स्त्री मुक्ति जैसे बहु विवेचित पदों के अर्थ भी बहुत हद तक बदल चुके हैं। अर्थात समय एवं परिवेश के साथ-साथ जीवन और जीवन दृष्टि भी बदलती चली जा रही है जो एक स्वाभाविक प्रकिया है। ऐसे में 'स्त्री-दासता' और 'स्त्री मुक्ति' के प्रश्नों पर भी नये सिरे से विचार करने की आवश्यकता महसूस की जा रही है, जिससे 'स्त्री मुक्ति का स्वप्न' वास्तव में क्या है ? यह समझा जा सके।

कथा साहित्य के प्रति अत्याधिक रुचि के कारण ही मैंने एम.फिल लघु शोध-प्रबंध की उपाधि हेतु निर्धारित शोध-प्रबंध में भी उपन्यास-साहित्य संबंधित विषय का चयन किया। मेरे लघु शोध-प्रबंध का विषय है "मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' में चित्रित स्त्री"। प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध चार अध्यायों में विभाजित है -:

लघु शोध-प्रबंध का प्रथम अध्याय "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और मैत्रेयी पुष्पा" है। इस अध्याय में सर्वप्रथम उपन्यास का अर्थ बताया गया है, इसके बाद उपन्यास के क्रमिक विकास पर प्रकाश डाला गया है। इसके अंतर्गत ही उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियों को उदाहरण सहित प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार इसमें मैत्रेयी पुष्पा का व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। इसमें मैत्रेयी पुष्पा के जन्म, जन्म स्थान, पारिवारिक परिस्तिथियाँ, परिवेश, शिक्षा- दीक्षा पर दृष्टि डाली गई है। इनके कृतित्व में उपन्यास, कहानी, नारी-विमर्श से संबंधित लेख सम्मिलित हैं।

द्वितीय अध्याय "स्त्री जीवन के विविध रूप" है। इसके अंतर्गत सर्वप्रथम स्त्री के अर्थ को बताया गया है साथ ही स्त्री के स्वरूप के विविध आयामों पर प्रकाश डाला गया है। इसके बाद भारतीय स्त्रियों की स्थिति पर दृष्टि डाली गई है। तत्पश्चात समकालीन शब्द के अर्थ को बताते हुए, समकालीन स्त्रियों की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

तृतीय अध्याय : 'चाक' में वर्णित स्त्री जीवन है। इस अध्याय के अंतर्गत 'चाक' का परिचय प्रस्तुत किया गया है, उसके बाद इसके कथावस्तु पर दृष्टि डाली गई है साथ ही इस उपन्यास के जो प्रमुख पात्र हैं उनका विवरण दिया गया है, इसके अलावा स्त्री की जीवन से संबंधित जो समस्याएँ हैं उसे दिखाया गया है साथ ही 'चाक' उपन्यास के उद्देश्य और भाषा शैली पर भी प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय की दूसरी इकाई में परिवार एवं समाज का अर्थ बताते हुए मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में बदलते पारिवारिक संबंध एवं विघटन की स्थिति को दर्शाया गया है, समाज में मुख्य रूप से स्त्री पीड़ा मात्र देह की पीड़ा नहीं है। वह स्त्री के सामाजिक न्याय के लिए संघर्षरत है जिसे इस उपन्यास में उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। साथ ही स्त्री की आर्थिक स्थिति के अंतर्गत आर्थिक परिवेश में परिवर्तन एवं स्वावलम्बन की चेतना को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। वैवाहिक संस्थाओं पर बदलती आर्थिक स्थितियों के प्रभाव के अंतर्गत यौन संबंध, महिला के अधिकार, शिक्षा व्यवस्था में स्त्री का प्रवेश का आकलन भी प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय : 'चाक' में चित्रित स्त्री एवं मैत्रेयी पुष्पा की रचना दृष्टि' है। इस अध्याय के अंतर्गत स्त्री की वेदना पर प्रकाश डाला गया है साथ ही इस उपन्यास में प्रतिशोध का स्वर किस तरह फूटता है उस पर भी प्रकाश डाला गया है। इस उपन्यास की स्त्रियाँ घर परिवार की चारदीवारी तोड़कर बाहर निकलती है, पति के अधिकार के घेरे को तोड़ती हैं और न्याय और सत्य का पक्ष लेती नजर आती हैं। ये सिर्फ अपनी मुक्ति ही प्राप्त नहीं करती बल्कि एक विशाल जन समूह की मुक्ति का अगुआ भी बन जाती है। इसके अलावा इस अध्याय के अंत में मैत्रेयी पुष्पा के लेखन संबंधी वैशिष्टय को चित्रित करने का प्रयास किया गया है। लेखिका ने परंपरा के साथ-साथ आधुनिकता को यथास्तिथिवाद के साथ- साथ परिवतर्नशीलता को रेखांकित किया है। उपसंहार में प्रस्तुत लघुशोध-प्रबन्ध की मुख्य स्थापनाओं को व्यवस्थित किया गया है तथा अंत में परिशिष्ट दिया गया है।

सर्वप्रथम मैं अपने शोध निर्देशक श्री दिनेश साहू को हृदय के अंत:स्थल से प्रणाम करती हूँ। जिनके निर्देशन और प्रोत्साहन से ही इस लघु शोध प्रबंध को आकार देना सम्भव हो पाया है। मैं सिक्किम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रति भी आभारी हूँ जिन्होंने इस विषय को स्वीकृति प्रदान कर मुझे अनुग्रहीत किया। मैं अपने पुस्तकालय को भी आभार व्यक्त करती हूँ जिससे मुझे प्रचुर मात्रा में पुस्तकें आसानी से प्राप्त होती रही।

मैं आभार व्यक्त करती हूँ प्रो. विश्वनाथ प्रसाद सर को जिन्होंने एम.ए. में मुझे पढ़ाया और शोध कार्य के दौरान भी लगातार मेरी सहायता की और सिक्किम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के मेरे गुरुजनों में डॉ. आदित्य विक्रम सिंह, डॉ. श्रीकांत द्विवेदी, डॉ. चुकी भूटिया, डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री जी को मैं हृदय से कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। जिन्होने सदैव आत्मीयपूर्ण ढंग से हमारा मार्गदर्शन किया।

मैं आभार व्यक्त करती हूँ अपने सहपाठी नुनिता राई, अभिनव सिंह और आलोक जी को और साथ ही मेरे अनुज कृष्णा शाह और गंगा चौहान का जिन्होंने शोधकार्य के दौरान मुझे सहायता और उत्साह प्रदान किया। अंत में मैं अपने पूरे परिवार को आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मुझे हमेशा प्रोत्साहित किया साथ ही उनका आशीर्वाद हमेशा मुझपर बनी रही।

स्थान: गंगटोक, सिक्किम **अनुसंधित्सु**

तिथि : **रंजू कुमारी गुप्ता**

प्रथम अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और मैत्रेयी पुष्पा

1. क. स्वातंत्र्योतर हिंदी उपन्यास

उपन्यास आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा है। उपन्यास शब्द 'उप' और 'न्यास' से मिलकर बना है। 'उप' का अर्थ समीप और 'न्यास' का अर्थ रचना होता है। अर्थात 'उपन्यास वह है जिसमें मानव जीवन के किसी तत्व को उक्तिउक्त के रूप में समन्वित कर समीप रखा जाये। उपन्यासकार इसमें मानव-जीवन से संबंधित सुखद एवं दुखद घटनाओं को निश्चित तारतम्य के साथ चित्रित करता है। अंग्रेजी में इसे 'नॉवेल' कहा जाता है। डॉ. रामचंद्र तिवारी ने 'नॉवेल' के अर्थ में उपन्यास शब्द का प्रयोग बंगला प्रभाव की देन बताया है। 'बंगला' में अंग्रेजी के 'रोमांस' शब्द के लिए उपन्यास शब्द का प्रयोग किया जाता था। प्राचीन काल में कथा साहित्य को उपकथा या उपाख्यान कहा जाता था। संभवतः 'उपाख्यान' का उपसर्ग 'उप' और 'रमन्यास' के 'न्यास' के आकस्मिक संयोग से 'उपन्यास' शब्द बना और जो अंग्रेजी के 'नॉवेल' और 'रोमांस' के सम्मिलित अर्थ का द्योतक कहलाया। उपन्यास के लिए मराठी में 'नवलिका' एवं 'कादम्बरी' और उर्दू में 'अफसाना' आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं। उपन्यास के विषय में विभिन्न हिंदी विद्वानों ने जो मत प्रस्तुत किए है वे अपने आप में पूर्ण नहीं कहे जा सकते हैं। प्रेमचंद उपन्यास के मूल तत्व पर विचार करते हुए उन्होंने मानव-चरित्रों पर प्रकाश डालना और उनके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल विषय माना है। बाबू श्यामसुंदर दास उपन्यास को मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा के रूप में आख्यायित करते हैं। उपन्यास के लिए यही कहना अधिक उचित प्रतीत होता है कि यह मनुष्य जीवन का स्पष्ट, यथार्थ और गद्यात्मक चित्र है। इसमें मानव मन को प्रोत्साहन प्रदान करने की अपरिमित शक्ति होती है और इसके माध्यम से जीवन को विवेचित-विश्लेषित किया जा रहा है।

हिंदी में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने बंगला प्रभाव की छाया में उपन्यास परम्परा का प्रारंभ किया। यही कारण है कि शुरुआती दौर में बंगला साहित्य में उपन्यास कला हिंदी से अधिक समृद्ध थी। बंगला में उपन्यास लेखन अंग्रेजी उपन्यास के प्रभाव से प्रारंभ हुआ। इस प्रकार हिंदी के आरंभिक उपन्यास

प्रत्यक्षतः बंगला के प्रभाव से और अप्रत्यक्षतः अंग्रेजी के प्रभाव से प्रभावित थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित एक निबंध 'उपन्यास रहस्य' में यह स्वीकार किया है कि उपन्यास के प्रचलन, विकास एवं सृजन का श्रेय पश्चिमी देशों के लेखकों को ही है, जिनकी प्रेरणा से हिंदी में भी उपन्यास लिखा जाने लगा।

जब से उपन्यास लेखन प्रारंभ हुआ है तब से आज तक इसका पर्याप्त विकास हो चुका है। यही कारण है कि आज जो उपन्यास उपलब्ध हैं, वह कोई एक प्रकार का न होकर उसमें विविधता देखने को मिलती है। आज के उपन्यास कुछ सामाजिक, कुछ मनोवैज्ञानिक, कुछ ऐतिहासिक है, इनमें से अधिकांश अस्तित्ववादी चेतना, वैचारिकता और राजनैतिक चेतना से अभिप्रेरित और प्रभावित होकर लिखे जा रहे हैं। स्वातंत्र्योतर हिंदी उपन्यास को समझने के लिए इसके क्रमिक विकास पर प्रकाश डालना आवश्यक है। हिंदी उपन्यास के क्रमिक विकास के प्रमुख चरण निम्नलिखित हैं –

क- प्रथम चरण : भारतेंदु युगीन उपन्यास

ख- द्वितीय चरण : द्विवेदी युगीन उपन्यास

ग- तृतीय चरण : प्रेमचंद युगीन उपन्यास

घ- चतुर्थ चरण : प्रेमचंदोत्तर उपन्यास

ङ- पंचम चरण : स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास

क. भारतेंदु युगीन उपन्यास

यह हिंदी उपन्यास का प्रारंभिक चरण था। इस समय उपन्यास विधा अपना स्वरुप ग्रहण करने का प्रयास कर रही थी। हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास के संबंध में विद्वानों में मतभेद रहा है। इस संबंध में जिन दो उपन्यास के नाम लिए जाते हैं, वह भारतेंदुयुगीन ही है। ये उपन्यास श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत 'भाग्यवती'(1877) और लाला श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षागुरु' (1882) है। अधिकतर विद्वान 'परीक्षागुरू' को ही हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास मानते हैं। इस काल के प्रमुख उपन्यासकारों में पंडित बालकृष्ण

भट्ट का स्थान महत्वपूर्ण है। इनके लिखे तीन उपन्यास 'रहस्यकथा'(1879), 'नतून ब्रह्मचारी'(1886), तथा 'एक अजान सौ सुजान'(1907) उल्लेखनीय हैं। इनके उपन्यासों का मूल स्वर सुधारवादी एवं उपदेशमूलक हैं। भारतेंदु जी के मित्र ठाकुर जगमोहन सिंह ने 'श्यामा स्वप्न' नामक एक बृहत उपन्यास की रचना 1988 ई. में की थी। इसका मूल प्रतिपाद्य राधा-कृष्ण के प्रेम का चित्रण रीतिकालीन पद्धति पर करना रहा है। राधाकृष्ण दास ने गोवध की समस्या का निवारण करने हेतु 'निस्सहाय हिन्दू' (1890) नामक उपन्यास लिखा। लज्जाराम मेहता ने सुधारवादी ढंग पर 'धूर्त रसिकलाल, 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' और 'बिगड़े की सुधार' उपन्यास लिखे। भारतेंदु युग के उपन्यासकारों में देवकीनंदन खत्री का नाम सर्वाधिक आदर से लिया जाता है। इन्होंने तिलस्मी और ऐयारी उपन्यासों की रचना करके पाठकों का पर्याप्त मनोरंजन किया। ऐसा कहा जाता है कि देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों को पढ़ने के लिए ही बहुत से अहिंदी भाषियों ने हिंदी सीखी। इनके लिखे प्रसिद्ध उपन्यास – चन्द्रकान्ता (1891), चन्द्रकान्ता संतति, काजर की कोठरी, भूतनाथ, कुसुम कुमारी, नरेंद्र मोहनी, वीरेन्द्र वीर आदि हैं। इस काल में लिखे गए उपन्यास प्रधानतः सुधारवादी एवं उपदेशवादी प्रवृत्ति से परिचालित थे और इनका मुख्य उद्देश्य मनोरंजन ही था।

भारतेंदु युग के उपन्यासों में आदर्शवाद, उपदेशात्मकता और नैतिकताबोध की प्रतिष्ठा का विशेष प्रयत्न दिखाई देता है। साथ ही अत्यधिक उपन्यासों के अंत में भारतीय आदर्श की प्रतिष्ठा की गई है। बंगला का प्रभाव भी इस युग के उपन्यासों में देखा जा सकता है। यह युग अनैतिकता का निषेध और नैतिकता की प्रतिष्ठा करता है। सामाजिक सुधार इन प्रारंभिक उपन्यास का लक्ष्य रहा है। साथ- साथ उपन्यास में एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में तिलस्मी और ऐयारी को भी देखा जा सकता है। इस युग के कुछ उपन्यासकारों में लाला श्रीनिवासदास, श्रध्दाराम फिल्लौरी, बालकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह, राधाकृष्ण दास, देवकीनंदन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी आदि हैं।

ख. द्विवेदी युगीन उपन्यास

हिंदी साहित्य में उपन्यास का यह द्वितीय चरण भारतेंदु युगीन प्रवृतियों से पूर्णतः प्रभावित रहा। द्विवेदी युग में लिखे गए उपन्यास भारतेंदु युगीन उपन्यास से अधिक समृद्ध दिखाई पड़ते हैं। इस युग में

लिखे गए उपन्यासों में तिलस्मी और ऐयारी उपन्यासों की प्रधानता है । इस प्रकार के उपन्यासों की शुरुआत भारतेंदु युग में ही देवकीनंदन खत्री द्वारा हो चुकी थी। इस युग में गोपालराम गहमरी द्वारा जासूसी उपन्यास का श्रीगणेश हुआ । वे अंग्रेजी के जासूसी उपन्यास लेखक 'आर्थर कानन डायल' से बेहद प्रभावित थे। गहमरी के उपन्यासों में प्रमुख हैं – सरकटी लाश (1900), जासूस की भूल (1901), जासूस पर जासूस (1904), गुप्त भेद (1913), जासूस की ऐयारी (1914) आदि। इन उपन्यासों ने मनोरंजन का ही कार्य किया है। जासूसी उपन्यासों में किशोरीलाल गोस्वामी कृत जिन्दे की लाश, तिलस्मी शीशमहल, लीलावती, याकूत तख्ती आदि उल्लेखनीय है। द्विवेदी युगीन उपन्यासकारों में अयोध्यासिंह उपाध्याय का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। उनके लिखे दो उपन्यास हैं –'ठेठ हिंदी का ठाठ' तथा 'अधखिला फूल' । प्रथम उपन्यास में हिन्दू समाज की कुरीतियों पर प्रहार किया गया है, जबकि द्वितीय उपन्यास में एक जमींदार की कामुकता का परिष्कार दिखाया गया है । इस प्रकार दोनों ही उपन्यास सुधारवादी परम्परा के उपन्यास है।

द्विवेदी युगीन उपन्यास ज्यादात्तर घटना प्रधान उपन्यासों से संबंधित है। इस प्रकार के उपन्यास लेखन की प्रेरणा रेनाल्ड्स के द्वारा लिखे गये 'मिस्ट्रीज ऑफ द कोर्ट लन्दन' से संबंधित है। लन्दन रहस्य इसी अंग्रेजी उपन्यास का हिंदी अनुवाद है। इस युग में ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की प्रवृत्ति भी मिलती है। लेखकों ने इस युग में ऐतिहासिक घटना एवं पात्रों के माध्यम से उपन्यास रचा। ये उपन्यास पाठकों के कुतूहल एवं रहस्य-रोमांच को तृष्टि प्रदान करता है। सामाजिक चेतना से युक्त उपन्यास भी इस युग में देखने को मिलते हैं। इस प्रवृत्ति के लेखकों में हरिकृष्ण जौहर, किशोरी लाल गोस्वामी, रामलाल वर्मा, दुर्गाप्रसाद खत्री, अयोध्या सिंह उपाध्याय आदि प्रमुख है।

हिंदी उपन्यासों के इस चरण में लिखे गए उक्त उपन्यासों का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन एवं समाज सुधार ही रहा है। भले ही उपन्यास कला की दृष्टि से इस काल के उपन्यास उल्लेखनीय न हों, किन्तु इन्होंने उपन्यास को एक दिशा देने का प्रयास किया है। उपन्यास के विषय, शिल्प एवं भाषा का जो विकास इस काल में हुआ उसी का संशोधित रूप आगे के उपन्यासों में दिखाई पड़ता है। इन उपन्यासों ने प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों के लिए पृष्ठभूमि तैयार की है। इन उपन्यासों से वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक एवं

संवेदनात्मक शैली का प्रयोग होना प्रारम्भ हो चुका था जिसने परवर्ती उपन्यासकारों को अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करने में अपूर्व योगदान किया होगा, ऐसा कहना अतिसंयोक्ति संगत न होगा। इस युग में हिंदी उपन्यास ने अपना मार्ग तलाश लिया। अब वह एक मार्ग पर पहुँच चुका था जहाँ से आगे का रास्ता सीधा एवं सपाट था। इस तरह कहा जा सकता है कि द्विवेदी युगीन उपन्यास के माध्यम से प्रेमचंद युगीन उपन्यास की पृष्ठभूमि तैयार हुई।

ग. प्रेमचंद युगीन उपन्यास

हिंदी उपन्यास के विकास का तीसरा चरण प्रेमचंद से शुरू होता है। प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकारों में 'प्रेमचन्द' अपनी महान प्रतिभा के कारण युग प्रवर्तक के रूप में जाने जाते हैं। वस्तुतः सही अर्थ में उन्होंने ही हिंदी उपन्यास शिल्प का विकास किया। उनके उपन्यासों में पहली बार सामान्य जनता की समस्याओं की कलात्मक अभिव्यक्ति की गई थी और जनजीवन का प्रामाणिक एवं वास्तविक चित्र पाठकों को देखने को मिला। अपने महान उपन्यासों के कारण वे वास्तव में 'उपन्यास सम्राट' की पदवी पाने के अधिकारी सिद्ध हुए। प्रेमचंद के प्रमुख उपन्यासों में हैं – सेवासदन (1918), प्रेमाश्रम (1922), रंगभूमि (1925), कायाकल्प (1926), निर्मला (1927), गबन (1931), कर्मभूमि (1932), गोदान (1936), मंगलसूत्र (अपूर्ण)। प्रेमचंद ने साहित्य को मनोरंजन के स्तर से ऊपर उठाकर जीवन के साथ जोड़ने के काम किया। 'सेवासदन' में समाज में वैश्यों की स्थिति, कुलीनता का प्रश्न, पत्नी का स्थान आदि समस्याओं को उठाये। 'निमर्ला' में दहेज़ प्रथा और अनमेल विवाह की समस्या को प्रस्तुत किये। 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' में कृषक वर्ग की समस्या पर विचार किये। 'रंगभूमि' में शासक के अत्याचारों का चित्रण है तो 'कर्मभूमि' में स्वतंत्रता संग्राम की एक झलक है। 'गबन' में उन्होंने स्त्रियों के आभूषण तथा प्रेम के दुष्परिणामों का चित्रण किया है तो 'कायाकल्प' पुनर्जन्म से संबंधित है।

प्रेमचंद के समकालीन उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' , आचार्य चतुरसेन शास्त्री, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', वृन्दावन लाल वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, जी. पी. श्रीवास्तव आदि प्रमुख है। प्रसाद जी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने काव्य, नाटक, कहानी आदि क्षेत्रों में सफलता के बाद उपन्यास रचना अर्जित की। उनके तीन उपन्यास कंकाल, इरावती और

तितली है। इन उपन्यासों में उन्होंने आदर्श प्रेम और ग्रामीण समस्याओं का चित्रण किया है। इस युग में विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक के 'भिखारिणी' और 'माँ' उपन्यास काफी प्रसिद्ध है। 'भिखारिणी' उपन्यास में उन्होंने अंतर्जातीय विवाह की समस्या को कथानक का आधार बनाया है तथा 'माँ' उपन्यास में उन्होंने मध्यवर्गीय परिवार का चित्रण करते हुए वेश्यालयों के वातावरण को प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद युगीन उपन्यासकारों में आचार्य चतुरसेन शास्त्री एक प्रतिभा संपन्न उपन्यासकार है। उन्होंने इतिहास पुराण से कथानकों का चयन करने के साथ-साथ काल्पनिक पात्रों के द्वारा सामाजिक समस्याओं का उद्घाटन किया। 'वैशाली की नगरवधू', 'वयं रक्षामः', 'सोमनाथ', 'आलमगीर', 'सोना और खून', 'रक्त का प्यास', 'आत्मदाह', 'अमर अभिलाषा', 'मंदिर की नर्तकी', 'नरमेध', 'अपराजिता' आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास है। इसके अलावा पंडित बेचन शर्मा 'उग्र' के 'चंद हसीनों के खतूत', 'दिल्ली का दलाल', 'बुधुआ की बेटी', 'शराबी', 'सरकार तुम्हारी आंखों में', 'जीजा जी', 'फागुन के दिन' आदि उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ के साथ उसमें व्याप्त अनेक समस्याओं पर आधरित है। इस युग में ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गए। वृन्दावनलाल वर्मा हिंदी के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासकार माने जाते हैं। 'गढ़ कुंडार', 'विराट की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी', 'मृगनयनी', 'टूटे कांटे', 'माधव जी सिंधिया' आदि उपन्यासों में उन्होंने ऐतिहासिक पात्रों का चरित्र नायक के रूप में प्रस्तुत किया है।

प्रेमचंद युगीन उपन्यासों में विषय वैविध्य एवं शिल्पगत नवीनता दिखाई पड़ती है। उपन्यासकारों ने एक ओर तो सामाजिक समस्याओं को अपने उपन्यासों का विषय बनाया तो दूसरी ओर ऐतिहासिक कथानकों पर नवीन दृष्टि से विचार किया। इस समय तक उपन्यास का क्षेत्र व्यापक हो गया था और वह मानवीय संबंधों को उजागर करने वाला एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ बन गया था। मानव चरित्र का सूक्ष्म अंकन करने में वे निष्णात हो गया। प्रेमचंद ने इस काल के उपन्यास को एक नया मोड़ दिया और उसके विविध क्षेत्रीय विकास की आधारभूमि निर्मित की।

घ. प्रेमचंदोत्तर उपन्यास

प्रेमचन्द के उपरांत हिंदी उपन्यास किसी एक निश्चित दिशा की ओर अग्रसर नहीं हुआ, अपितु उसकी विविध धाराएँ अनेक दिशाओं की ओर प्रवाहित हुई। प्रेमचंदोत्तर युग में जो उपन्यास लेखन हुआ,

उनमें विषय-विस्तार अपेक्षाकृत अधिक दिखलाई देता है। इस युग में मनोविश्लेषणवादी, साम्यवादी और ऐतिहासिक उपन्यास ज्यादा लिखे गए। मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकारों में जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी एवं अज्ञेय का महत्त्वपूर्ण योगदान है। जैनेंद्र ने 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी' आदि उपन्यास लिखकर हिंदी उपन्यास को एक नई दिशा प्रदान की। इन उपन्यासों में विभिन्न पात्रों के मन की उलझनों, गुत्थियों एवं शंकाओं का निरूपण कथा के माध्यम से किया गया। इस परम्परा के दूसरे उपन्यासकार इलाचंद्र जोशी ने उच्चकोटि के लगभग एक दर्जन उपन्यासों की रचना की है। उनके प्रमुख उपन्यास हैं - 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया', 'निर्वासित', 'जिप्सी', 'जहाज का पंछी'। इन उपन्यासों में जोशी जी ने मानव मन की कुंठाओं एवं ग्रंथियों का सुंदर विश्लेषण किया है। मनोविश्लेषण परक उपन्यासों में 'अज्ञेय' द्वारा रचित 'शेखर एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी' का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

हिंदी के साम्यवादी उपन्यास वे हैं, जिनमें मार्क्सवादी विचारधारा का आधार ग्रहण करके कथानक का ताना-बाना बुना गया है। यशपाल, राहुल सांस्कृत्यायन, रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृत राय इसी कोटि के उपन्यासकार है। यशपाल ने 'पार्टी कामरेड', 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'दिव्या' आदि उपन्यासों में अपने मार्क्सवादी विचारों को अभिव्यक्ति दी है। भैरव प्रसाद गुप्त ने 'मशाल' और 'सती मैया का चौरा' आदि उपन्यासों में मार्क्सवादी चेतना का निरूपण किया है। हिंदी में ऐतिहासिक उपन्यासकारों में चतुरसेन शास्त्री और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम लिया जा सकता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा, 'चारू चन्द्रलेख', 'पुनर्नवा' और 'अथ रैक्व आख्यान' में इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय करते हुए रोचक उपन्यास की रचना की है। राहुल सांस्कृत्यायन ने 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे तथा रांघेय राघव ने 'मुर्दों का टीला' नामक उपन्यास में मोहन जोदड़ो के गणतंत्र का चित्रण किया है।

इस युग में दो महत्त्वपूर्ण उपन्यास लेखक भगवती चरण वर्मा और अमृतलाल नागर हैं। वर्मा ने कई प्रसिद्ध उपन्यासों की रचना की। जिनमें 'चित्रलेखा', 'भूले-बिसरे चित्र', 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' आदि प्रमुख है। इन उपन्यासों में समकालीन राजनीति एवं समाज से कथानक लिए गए हैं तथा उपन्यासकार ने अपनी पैनी दृष्टि से संयुक्त परिवार की समस्या, शोषण, सत्याग्रह, मिल-मालिकों की दुरंगी नीति, पुलिस की धांधली

आदि का सटीक चित्रण किया है। अमृतलाल नागर ने 'सेठ बांकेलाल', 'अमृत और विष', 'बूंद और समुद्र', 'महाकाल', 'मानस का हंस' आदि उपन्यासों की रचना की। देवेन्द्र सत्यार्थी जैसे कथाकारों ने इसी युग में लोक-कथात्मक पृष्ठभूमि को निर्मित करके अपेक्षाकृत असामान्य विषयों पर उपन्यासों की रचना की। इनके उपन्यासों की कथा आंचलिक चित्रण से जुड़ी हुई है। इसी युग में राजनैतिक क्षेत्र में सबसे अधिक क्रियाशीलता दिखाई देती है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् यह राजनैतिक क्षेत्र और भी अधिक संघर्षयुक्त रूप लेकर सामने आया। राजनैतिक चेतना का जो स्वरुप इस समय था, उसका यथार्थ चित्रण इस युग की उपन्यासों में देखने को मिलता है। इस युग के अन्य उपन्यासकारों में छविनाथ पाण्डेय, उदयशंकर भट्ट, रामवृक्ष बेनीपुरी, शांतिप्रिया द्विवेदी, देवेन्द्र सत्यार्थी, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। आंचलिकता की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के कारण भी प्रेमचंदोत्तर उपन्यास विधा एक नई दिशा और एक नई शैली की ओर बढ़ती गई।

ङ. स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यास

प्रेमचंदोत्तर युग के पश्चात् विश्व के रंगमंच पर अनेक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। भारत को स्वतंत्रता की प्राप्ति हुई और स्वातन्त्र्योत्तर भारत में विकसित परिस्थितियों का स्वरूप उपन्यास विधा में एक नए रूप में सामने आता है। कुछ विद्वानों द्वारा 1950 ई. के बाद के दशक को आंचलिक उपन्यासों का दशक मान लिया गया। वास्तव में यह दशक एक नए प्रकार के मुक्ति आंदोलन से जुड़ा हुआ था। यह मुक्ति वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों थी। इस समय व्यक्ति पुराने नैतिक मूल्यों से मुक्त होकर खुले में साँस लेना चाहता था। देश-विभाजन की समस्याएँ और उसकी चिन्ता भी इस दशक के उपन्यासों के विषय रहे हैं। इस विषय में डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय द्वारा प्रस्तुत स्वातन्त्र्योत्तर परिवेश का यह चित्र स्पष्टीकरण में विशेष सहायक है। उन्होंने लिखा है - "स्वाधीनता के पश्चात् अनेक नई समस्याएँ सामने आयीं। विश्व के दूसरे राष्ट्रों की भाँति केवल दासता का ही अंत नहीं था और न एक शासन सत्ता के स्थान पर नई शासन की स्थापना की बात थी। भारत की स्थिति नितांत भिन्न थी। अंग्रेजों ने न केवल आर्थिक दृष्टि से यहाँ के व्यवस्था को विश्रृंखलित कर दिया था, वरन दो प्रधान जातियों – हिन्दू और मुसलमानों के मध्य विभाजक रेखा खींचकर घृणा, विद्वेष एवं वैषम्य की भयंकर भावनाएँ फैला दी थीं। स्थिति उलझती गयी, आजादी के

तुरंत बाद मुस्लिम दंगों, आंदोलनों की दर्दनाक घटनाओं, औरतों की अस्मिता एवं इज्जत की खुली लूट और भीषण नर हत्याओं ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जिसने नई उभरने वाली पीढ़ी के सामने अँधेरा फैला दिया था। एक ओर तो उसके सामने दिशाएँ स्पष्ट नहीं थी और दूसरी ओर उनके नसों में दासता की भावनाओं को झंझोड़ता हुआ रक्त खौल रहा था। उसने स्थिति समझने और उसी के अनुसार गतिशील होने का प्रयत्न किया। इस युगबोध और परिवर्तित परिस्थितियों की कठोरता ने नयी पीढ़ी को जो नया भावबोध प्रदान किया, वह सामाजिक और अपूर्व जिजीविषा का भाव लिए हुए था।"[1] उपर्युक्त परिस्थितियों से प्रेरित होकर जो उपन्यास सामने आये, वह विभिन्न प्रकार के रंग रूप लिए हुए हैं। प्रमुखत: जो रूप सामने आये हैं, वे हैं – मानवतावादी उपन्यासधारा, स्वच्छन्दतावादी उपन्यासधारा, प्रकृतवादी उपन्यास चेतना, व्यक्तिवादी उपन्यास चेतना, मनोविश्लेषणवादी उपन्यास चेतना, सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास चेतना, ऐतिहासिक चेतना से प्रेरित उपन्यासधारा और आंचलिकता से परिपूर्ण उपन्यासधारा। स्वातंत्र्योत्तर भारत की परिस्थिति में काफी कुछ बदला है। मानव-मूल्यों का नये संदर्भों में विकास हुआ। जीने का अटूट मोह, प्राचीन मर्यादाओं के ध्वंस पर नयी प्रस्थापनाएँ, मुक्ति के लिए छटपटाहट भरा आग्रह, मानव-स्वभिमान, स्वातंत्र्य बोध, प्रत्येक प्रस्थापित सत्य को बुद्धि द्वारा पुनर्परीक्षित करने की भावना एवं अस्तित्व के प्रति सचेतन दृष्टि आदि ऐसे ही मानव-मूल्य हैं जो आजादी के बाद के भारत में विकसित हुए हैं। स्त्री-पुरुष के संबंधों में भी पर्याप्त अंतर आया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में व्यापक परिवर्तन हुआ। विभाजन के बाद की त्रासदी दंगे के रूप में देश झेल रहा था। साथ ही आजाद भारत के निर्माण और विकास की प्रक्रिया भी चल रही थी। इस कारणवश देश में परिवर्तन, विघटन और निर्माण की प्रक्रिया शुरू हुई। आजादी के जो मीठे-कड़वे अनुभव हुए उन सबको केंद्र में रखकर महत्त्वपूर्ण उपन्यासों की रचना हुई।

यशपाल का 'झूठा सच' स्वतंत्रता पूर्व और प्राप्ति के बाद के यथार्थ को चित्रित करने वाला उपन्यास है। इसका पहला खंड 'वतन और देश' और दूसरा खंड 'देश का भविष्य' आजादी के पूर्व और आजादी के बाद भारत की संघर्ष कथा को बड़ी सजीवता से रूपायित करते हैं। उन्हें उपन्यास और कहानी दोनों में ही सफलता प्राप्त हुई। 'मनुष्य के रूप' और 'दिव्या' उनकी अमर कृतियां है। अन्य उपन्यासकारों में चतुरसेन शास्त्री (धर्मपुत्र), विष्णु प्रभाकर (निशिकांत), भीष्म साहनी (तमस), कमलेश्वर

(लौटे मुसाफिर), जगदीश चन्द्र (मुट्ठी भर कांकर), राही मासूम रजा (आधा गाँव), भगवती चरण वर्मा (सीधी सच्ची बातें, प्रश्न और मरीचिका, वह फिर नहीं आई) और कृष्णबलदेव वैद (गुजरा हुआ जमाना) आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

पिछली पीढ़ी के व्यक्तिवादी, समाजवादी, मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करने वाले उपन्यासकार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी सक्रिय रहे। अमृतलाल नागर ने कई महत्त्वपूर्ण उपन्यास स्वतंत्रता के बाद में लिखे। उन्होंने अपने उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के सापेक्षिक संबंध को चित्रित किया है। उनके 'नवाब बांकेमल', 'महाकाल', 'बूंद और समुद्र', 'बिखरे तिनके', 'मानस के हंस', 'खंजन नयन' और 'करवट' जैसे प्रसिद्ध उपन्यास इसी काल में प्रकाशित हुई। अपने विस्तार और गहराई के कारण 'बूंद और समुंद्र' काफी श्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें बूंद, व्यक्ति और समुद्र समाज का प्रतीक है। इसमें भारतीय समाज के विभिन्न रूपों, रीतियों, आचार-विचारों और मर्यादाओं का चित्रण बड़ी खूबी से किया गया है।

भगवती चरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र', 'सामर्थ्य और सीमा', 'सबहिं नचावत राम गोसाईं', 'सीधी सच्ची बातें', उपेंद्रनाथ 'अश्क' के 'गिरते दीवारे', 'गर्म राख', 'शहर में घुमाव आईना', 'बांधों न नाव इस ठांव बंधु' जैसे सामाजिक उपन्यास स्वतंत्रता मिलने के 20-25 वर्षों की अवधि में लिखे गए। मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकारों में इलाचंद्र जोशी के 'मुक्ति पथ', जिप्सी', 'जहाज का पंछी', 'भूत का भविष्य' अज्ञेय के 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी' इस दशक की प्रमुख कृतियाँ हैं। देवराज का 'पथ की खोज', नागार्जुन का 'बलचनमा' धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', रूद्र का 'बहती गंगा' और रेणु का 'मैला आँचल' इस दशक के उपन्यास है। इन सभी उपन्यास में जूझते हुए आदमी और समाज की अवस्था को देखा जा सकता है।

इस तरह हिंदी उपन्यास अपने आरम्भ से लेकर वर्तमान तक विकास की ओर अग्रसर है। स्वातन्त्र्योत्तर काल से अब तक के दौर में कई पीढ़ी के उपन्यासकार आते हैं जो समसायिक चेतना से अनुप्राणित होकर उपन्यास को जीवन के वास्तविक संघर्ष के ईद-गिर्द ले आते हैं।

1. ख. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

प्रत्येक युग के साहित्य में उसके तत्कालीन युग का प्रभाव रहता है। उसकी प्रवृतियाँ तत्कालीन युग के प्रवृत्तियों से बहुत हद तक प्रभावित रहती है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियों पर विचार करे तो पायेंगे कि इस युग में भी लिखे गए उपन्यास अपने वर्तमान से प्रभावित है। स्वतंत्रता के बाद समाज में आई परिवर्तन का प्रभाव उस समय के उपन्यासों में देखा जा सकता है। यह समय आधुनिकता बोध का था, आधुनिक युग के अच्छाइयों के साथ-साथ उसकी विसंगतियों का प्रभाव लोगों में पड़ रही थी। शिक्षा के विस्तार के कारण मानव के अंदर नई चेतना का विकास हुआ। अतः इसी चेतना ने नई प्रवृत्ति को जन्म दिया। साहित्य के गद्य विद्या उपन्यास इससे कैसे वंचित रह सकता था। परिणाम स्वरूप इनमें नवीन प्रवृत्तियाँ उभर कर आई। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों की प्रमुख प्रवृत्तियों में मूल्य, आधुनिकता बोध, स्त्री पुरुष संबंध, नारी जीवन, मध्य वर्ग का विघटन, सामाजिक दायित्व बोध और शिल्प का महत्वपूर्ण स्थान हैं। इन सभी प्रवृत्तियों का वर्णन निम्नलिखित हैं -

क. मूल्य

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास पर विचार करते समय सबसे पहले 'मूल्य' की समस्या हमारे सामने आती है, क्योंकि साहित्य के संदर्भ में हमेशा 'विघटित मूल्य', 'नये मूल्य', 'जीवन मूल्य', 'मूल्य-मर्यादाओं' आदि पर चर्चा होती रहती है। 'मूल्य' का कोशगत अर्थ है 'कीमत', 'दाम', 'पूँजी' आदि। अमर कोश के अनुसार 'मूल्य' का पर्यायवाची है 'वेतन' या 'मजदूरी'। किसी भी वस्तु के बदले चुकाई गई राशि को 'मूल्य' कहते हैं। यह मूलतः अर्थशास्त्र का शब्द है। आधुनिक युग में इसका प्रयोग साहित्य के लिए होने लगा। साहित्य में इसका उपयोग मानवीय मूल्य, जीवन मूल्य इत्यादि के रूप में हुआ है। मानव जीवन के संदर्भ में 'मूल्य' मनुष्य की वह सांस्कृतिक पूँजी है जिसके आधार पर समाज विशेष का स्तर जाना जाता है। वास्तव में 'मूल्य' सामाजिक जीवन में धार्मिक और नैतिक पृष्ठभूमि लिए एक ऐसी विचारधारा है जिसका विकास व्यक्ति से समाज की ओर होता है। इसका आधार हम औचित्य-अनौचित्य के निर्णय से करते हैं। जिसके कारण हम सामाजिक जीवन में व्यवस्थित रूप से चलते हैं तथा सुख का अनुभव करते हैं। महाभारत में एक छोटा सा प्रसंग आता है जिसमें एक ब्राह्मण-परिवार का उल्लेख किया गया है। एक व्यक्ति

आता है और अचानक उसकी माता को पकड़ के ले जाता है तभी पुत्र पिता से पूछता है - यह सब क्या है? तो पिता उत्तर देते हैं 'जिसकी लाठी उसकी भैस' । इस प्रसंग से यह स्पष्ट होता है कि 'मूल्य' मानव जीवन का एक ऐसा लक्षण है जो समाज में मान्यता प्राप्त कर अलक्षित रूप में स्थापित होता है । जिस प्रकार देश-काल में परिवर्तन का चक्र घूमता रहता है उसी प्रकार 'मूल्य' नामक चक्र भी जीवन में घूमता रहता है । प्रत्येक देश के मूल्य में समानता नहीं होती है । जैसे की अमेरिका में जो जीवन मूल्य है वह भारत में नहीं है। साथ ही मध्य युग में जो भारतीय इतिहास का जीवन मूल्य था वैसा आज नहीं है । मूल्य में हमेशा परिवर्तन होता रहता है । इसलिए काल मार्क्स ने भी यह स्वीकार किया है कि उत्पादन और वितरण के साधनों में परिवर्तन होने के साथ-साथ उत्पन्न सामाजिक चेतना के अनुसार नवीन मूल्यों की सृष्टि होती है । नवीन मूल्य होने के साथ-साथ व्यक्ति-व्यक्ति के संबंध में तथा व्यक्ति के अपने चारों ओर के समाज और परिवेश के संबंध में भी परिवर्तन होना शुरू हो जाता है । भारत में आज वैज्ञानिक-तकनीकी की प्रगति, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था, जीवन की यांत्रिकता, अत्यधिक औद्योगिकीकरण, नगरीकरण और नगरों की अपार भीड़-भाड़ के कारण, पुराने मूल्य नकारे जा रहे हैं । नारी में नई चेतना और व्यक्तित्व उभर रहे है, फलतः स्त्री-पुरुष के संबंधों के मूल्य भी बदल रहे हैं, प्रेम और यौन-संबंधों की परिभाषा भी बदल रही है । कृष्णा सोबती का 'जिन्दगीनामा', मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी', उषा प्रियंवदा का 'रुकोगी नहीं राधिका' और 'पचपन खम्भे लाल दीवारें', ममता कालिया का 'बेघर' आदि उपन्यासों में स्त्री-पुरुष के सबंधों में बदल रहे मूल्य देखे जा सकते हैं । माता-पिता और संतान के बीच जो संबंध है, उसका मूल्य भी बदल रहा है । स्वतंत्र भारत में मध्यवर्ग बुद्धिजीवी के सामने सामाजिक जीवन एक बड़े भारी चुनौती के रूप में सामने आया है । जीवन में अजनबीपन, कुंठा संत्रास, अलगाव टूटन और भटकाव आदि का समावेश पाया जाता है । मोहन राकेश के 'अंधरे बंद कमरे में' और 'न आने वाला कल', राजेन्द्र यादव के 'उखड़े हुए लोग', निर्मल वर्मा के 'वे दिन', एक चिथड़ा सुख', कमलेश्वर के 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' आदि उपन्यासों में बदलते हुए जीवन मूल्य देखे जा सकते हैं । उपन्यास मानव मूल्य को दर्शाता है । स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में यही बदलते हुए मूल्य का वर्णन मिलता है ।

ख. आधुनिकता बोध

सामाजिक साहित्य के संदर्भ में 'आधुनिकता' और 'युग-बोध' का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है। यह काल सापेक्ष शब्द है। आधुनिक में 'ता' प्रत्यय लगने से 'आधुनिकता' शब्द बनता हैं। 'ता' का संबंध संवेदना से है। यहाँ 'आधुनिकता' का अर्थ आधुनिक होने के बोध से है। हर युग अपने समय में आधुनिक होता है। मगर आधुनिक होने का बोध उसे नहीं होता है। यही कारण है कि यह प्रश्न पहले कभी नहीं उठा, परंतु यह प्रश्न आज उठ रहे हैं, क्योंकि आज का जीवनक्रम इतनी तेजी से बदल रहे हैं कि जब तक हम एक प्रकार की 'आधुनिकता' को समझने की चेष्टा करते हैं, तब तक दूसरे प्रकार की 'आधुनिकता' आ जाती है। 'आधुनिकता' का अर्थ शराब पीना, बीयर पीना, तलाक देना, किसी होटलों और रेस्तराओं के उल्लेख करना आदि नहीं है और न वह इतिहास या परंपरा से अलग कोई कर्म ही है। संसार के विचारकों ने इतिहास की कोई भी परिभाषा दी हो, पर उन्होंने उसे 'आधुनिकता' से भिन्न माना। वास्तव में वर्तमान वैज्ञानिक एवं तकनीकी की प्रगति के फलस्वरूप निर्मित मानव-मन और परिवर्तित भाव-बोध तथा युग-बोध का ऐतिहासिक परम्परा के साथ समन्वय स्थापित कर जीवन के नये क्षितिज स्पर्श करना ही 'आधुनिकता' है। 'आधुनिकता' मानव के नये अध्यात्म की खोज है। आधुनिकता कोई चीज नहीं है जो ओढ़ी या लाद दी जाए। आधुनिकता नया मानव-सापेक्ष की दृष्टिकोण है जिससे जीवन को गहराई से नापा जा सकता है। 'आधुनिक युग की जटिल मनःस्थिति और परिवेश को पकड़ पाना ही 'आधुनिक युग बोध' है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में 'आधुनिकता' महानगरों के जीवन से जुड़ा है तथा उसमें आधुनिक महानगरों की जीवन-गाथा का चित्रण है। इन उपन्यासकारों ने आधुनिकता बोध के कारण आ रहे परिवर्तन को व्यक्त किया। इनमें राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, राजकमल चौधरी, मनोहर श्याम जोशी, सुरेन्द्र वर्मा आदि उपन्यासकारों के नाम लिए जा सकते हैं। 'आधुनिकता-बोध' वैचारिक स्तर पर अधिक गहरी है और संवेदना पर कम आधारित है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जीवन की संवेदना और परिवेश की जटिलता को पकड़ने की चेष्टा में हिंदी कथा साहित्य का बाह्य एवं आंतरिक रूप परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रहा है। वर्तमान 'आधुनिकता' को एक दृष्टि के रूप में अर्जित किया जा सकता है। इसे नए-तुले शब्दों में परिभाषित नहीं किया जा सकता। 'आधुनिकता' वर्तमान युग जीवन से प्राण रस ग्रहण करती है। परिवेश में व्याप्त घुटन, त्रास, पीड़ा 'आधुनिकता' के स्वरूप को निर्मित करते हैं। आधुनिक

व्यक्ति प्रतिदिन परिवेश के दबावों को झेलता हुआ संघर्षशील रहता है परंतु फिर भी वह अपने परिवेश एवं युग से जुड़ा रहता है। परिवेश के दबाव में 'टूटन' आधुनिकता का लक्षण नहीं है, बल्कि परिवेश से जुड़ने व आंतरिक व्यथा के चित्र उकेरने में ही 'आधुनिकता' अपने सही अर्थ को उपलब्ध करती है। मनुष्य की विचारधारा उसके इर्द-गिर्द के परिवेश को प्रभावित करती है। उसका चिंतन ज्यों का त्यों तार्किक, बौद्धिक तथा विश्लेषणपरक होता गया, उसकी दुनिया में व्यापक बदलाव आया है। यही कारण है कि आज हर जगह आधुनिकता की छाप दिखलाई पड़ती है। इन स्थितियों में साहित्य पर इन सबका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इस प्रकार व्यापक फलक पर फैले विभिन्न आयामों में 'आधुनिकता' को सहज ही प्राप्ति की जा सकती है। 'आधुनिकता' को फलित करने में व्यक्ति के मानस में परिवेश के अनुसार होने वाले धीमे परंतु निरंतर परिवर्तन के अतिरिक्त वैज्ञानिक प्रगति, औद्योगिकीकरण जैसे अभूतपूर्व परिस्थितयों तथा विकासवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद और अस्तित्तववाद जैसी विचारधाराओं का योग रहा है। इन सभी आधुनिक विचारधारों से प्रभावित होकर उपन्यास लिखे गए। इस तरह से आधुनिक बोध से संपन्न व्यक्ति सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक तथा चिंतन रूप में अधिक विचार को ग्रहण कर उसका विवेचन-विश्लेषण कर उन्हें नवीन मूल्यों में परिवर्तित करता है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में इसी आधुनिक प्रवृत्तियों का समावेश मिलता है। बदलते विचारों और संकल्पनाओं के प्रति आधुनिक व्यक्ति खुला दृष्टिकोण रखता है। हर बात का विश्लेषण वो अपनी बुद्धि से कर सकता है। कोरी आस्था और अंधविश्वास से वह कोसों दूर रहता है। 'आधुनिकता' एक ऐसा पैमाना है जिसके एक सिरे पर रूढ़िवादिता है और दूसरे सिरे पर पूर्ण आधुनिकता।

ग. स्त्री-पुरुष संबंध

व्यक्ति-केंद्रित होने के कारण द्वितीय महायुद्धोत्तर हिंदी उपन्यासों और कहानियों में स्त्री-पुरुष के संबंध को दाम्पत्य जीवन या दाम्पत्य जीवन से बाहर या विवाह से पूर्व, नये सामाजिक संदर्भों, संस्कारगत मान्यताओं और आज के शिक्षित एवं विशेष संस्कारों में पले स्त्री-पुरुष के संबंधों को गहराई के साथ देखा-परखा गया है। सामयिक नारी मुक्त ढंग से अपना जीवन जीने पर बल दे रही है। वह अपना स्वाधीन-व्यक्तित्त्व रखना चाहती है। पुरुष व्यक्तित्व के संदर्भ में नारी का और नारी व्यक्तित्त्व के संदर्भ में पुरुष का

जो दृष्टिकोण पहले था अब भी कुछ हद तक वैसा ही है। उसके स्वरूप में परिवर्तन दिखाई पड़ता है। किन्तु नारी के उभरते हुए नए व्यक्तित्व के साथ उसे अपने को 'एडजस्ट' करने की आवश्यकता का अनुभव हो रहा है। स्त्री-पुरुष संबंध के समीकरणों का निर्माण तथा पुनर्निर्माण बहुत कुछ ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था की विशेषता पितृसत्ता समाज है। भारतीय समाज में पुरुष के प्रभुत्व और स्त्री की अधीनता को पितृसत्ता मान्यता देती है। विवाह के अवसर पर वधू का अपने पैतृक घर से नाता टूट जाता है तथा वह उस परिवार की सदस्य हो जाती है जहाँ उसका विवाह होता है। पति की वंश परंपरा में उसकी संतानें होती है। परिवार के भीतर जो ज्येष्ठतम पुरुष होता है, वह मुख्य निर्णायक कर्ता होता है। हालाँकि उसे अन्य ज्येष्ठ पुरुषों से भी सलाह मशवरा करना पड़ता है। निर्णय लेने के प्रक्रिया में स्त्री की उपस्थिति स्पष्ट रूप से परिलक्षित नहीं होती यद्यपि अनुभवी, दृढ़ इच्छा शक्तिशाली और परिपक्व स्त्रियाँ अपनी बात जोड़ देकर कहती है, लेकिन वे प्रायः पृष्ठभूमि में रहती है। इस प्रकार घरेलू समूह की राजनीति में स्त्रियों की भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता, लेकिन अंतिम विश्लेषण में वे पुरुष प्रभुत्व पर गंभीरतापूर्वक कोई प्रश्नचिन्ह नहीं लगाती। निःसंदेह, कुछ ऐसे परिवारों के उदाहरण भी मिलते हैं जिनकी मुखिया स्त्री है, लेकिन यह तभी होता है जब बच्चे छोटे होते हैं, जो घरेलू समूह में केवल एक वयस्क स्त्री हो जाते है जो घर का दायित्व संभाल सकती है। जब बच्चे बड़े हो जाते हैं तो उनमें ज्येष्ठतम पुत्र गृहस्थी का मुखिया पद संभाल लेता है। उच्चतर सामाजिक समूहों में पुरुष भरण-पोषण करने वाले होते थे, किन्तु अब यह स्थिति भी तेजी से बदल रही है। यह बदलाव समाज में स्वतंत्रता के बाद बड़ी तीव्रता से हुआ, जिसका मूल कारण शिक्षा है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में इस बदलते हुए समाज का वर्णन मिलता है। स्त्री-पुरुष संबंधों में आज बदलाव देखने को मिला है। जहाँ स्त्रियाँ अपने ऊपर हो रहे शोषण को भाग्य समझ कर आसूँ बहाती थी। आज अपने ऊपर हो रहे शोषण का डट कर विरोध करती थी। यही स्त्री-पुरुष संबंध में यह बदलाव स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में देखे जा सकते हैं। स्त्रियाँ सार्वजनिक सेवाओं तथा व्यवसायों में प्रवेश कर रही हैं और नियमित वेतन अर्जित कर रही है। बढ़ती कीमतों तथा उच्चत्तर जीवन स्तर की इच्छाओं के कारण इस प्रवृत्ति को स्वीकार करना ही पड़ेगा। किंतु पुरुषों को यह अच्छा नहीं लगता कि उनका खर्च उनकी पत्नी उठाये। जब उनकी पत्नियाँ उनसे ज्यादा कमाती है तो उनके अहम को चोट लगती है। अब उभरती प्रवृत्ति पितृसत्ता के पक्ष में नहीं है, किन्तु अतीत की धुंध जल्दी खत्म नहीं

होती है। समाज स्वयं को बदलते परिदृश्य के अनुरूप ढाल रहा है, चाहे इस अनुकूलन की गति बहुत धीमी क्यों न हो। आजादी के इतने समय बाद भी वधू दहन तथा दहेज हत्याओं के समाचार अक्सर पढ़ने को मिलते हैं। स्त्री पुरुष संबंधों तथा स्त्रियों के प्रति जारी अन्याय के स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासकारों ने ध्यान आकृष्ट किया है। इसमें अनेक समाजसुधारक भी स्त्रियों के हित समर्थन में आगे आये हैं। कुछ संत कवियों ने मध्यकाल में स्त्रियों के प्रति अधिक मानवीय तथा न्यायपूर्ण व्यवहार करने का उपदेश दिया है।

पति-पत्नी या प्रेमी-प्रेमिका या वैवाहिक जीवन से बाहर या किसी भी बाजारू या घरेलू स्त्री के सतह पुरुष के संबंधों और तज्जनित उघड़ती हुई मन की परतों को दृष्टिपथ में रखते हुए उपन्यासकारों ने अनेक प्रश्न और समस्याएँ उठाई हैं। इन समस्याओं में सर्वप्रमुख समस्या संबंध-विच्छेद की है। संबंध-विच्छेद से कुछ समस्याओं का समाधान तो हो जाता है, किन्तु कुछ समस्याएँ और जटिल हो जाती है। ऐसी अनेक समस्याओं में नारी की अपनी तथा बच्चों की मनोवैज्ञानिक समस्याएँ अत्यंत गंभीर रूप धारण कर लेती है। नारी जीवन की विसंगतियों, बदलते संबंधों और नवीन परिस्थितियों के फलस्वरूप उत्पन्न नारी के संघर्षपूर्ण मन की विभिन्न स्थितियों का चित्रण करने में शिवानी, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, ममता कालिया, प्रभा खेतान, सुरेश सिन्हा आदि कुछ उपन्यासकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

घ. नारी जीवन

साहित्य में नारी जीवन का चित्रण तो आदिकाल से ही होता आया है, मगर साहित्य में सदियों से वह पुरुषों की भोग-विलास की वस्तु मात्र रही है, उसके जीवन के स्थान पर सदा से उसके सौंन्दर्य का ही चित्रण होता रहा है। आधुनिक युग में नवीन चेतना के विकास के कारण नारी जीवन को साहित्य में स्थान प्राप्त हुआ। साहित्य के सभी विधाओं में उसके जीवन का चित्रण किया गया। नारी जीवन को व्यक्त करने में उपन्यास विधा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाया। नारी शब्द 'स्त्री' शब्द का पर्याय है। नारी जीवन कई संदर्भों में सम्पूर्ण स्त्री वर्ग को दर्शाने के लिए भी इस्तेमाल किया जाता है, जैसे – नारी अधिकार, नारी शक्ति आदि। नारी जीवन विशेषत: निम्न और मध्य वर्ग के नारी-जीवन के आर्थिक सामाजिक, राजनीतिक, पारिवारिक आदि अन्य अनेक पक्ष हो सकते हैं, जिनकी ओर हिंदी के लेखकों का कम ध्यान गया है।

हमारे समाज में प्राचीन युग से ही नारी का विशेष स्थान रहा है। पौराणिक ग्रंथों में नारी को पूजनीय एवं देवीतुल्य माना गया है। यह धारणा रही है कि देव शक्तियाँ वहीं पर निवास करती है, जहाँ पर समस्त नारी जाति को प्रतिष्ठा और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। कोई भी परिवार, समाज अथवा राष्ट्र तब तक सच्चे अर्थों में प्रगति की ओर अग्रसर नहीं हो सकता, जब तक वह नारी के प्रति भेदभाव, निरादर अथवा हीनभाव का त्याग नहीं करता। हो सकता है अभी तक पुरुष ने नारी को अपनी काम-क्रीड़ा का साधन बना रखा था, उस पर आधिपत्य स्थापित कर रखा था। मगर आज इसमें परिवर्तन देखने को मिलता है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में नारी जीवन में व्याप्त समस्याओं को उभारने का प्रयास किया। स्वतंत्रता से पूर्व भी नारी जीवन का चित्रण मिलता है, मगर स्वतंत्रता के बाद बहुत बड़ा परिवर्तन देखने को मिलता है, यह परिवर्तन स्त्री लेखिकाओं का साहित्य में कलम चलाना है। स्वातंत्र्योत्तर बहुत से स्त्री लेखिकाओं ने नारी जीवन का वर्णन किया, जो उसकी स्वानुभूति थी। अतः अपने जीवन से जुड़ी समस्याओं को लोगो के समक्ष लाने का प्रयास किया। ऐसा नहीं है कि केवल स्त्री लेखिकाओं ने ही स्त्री जीवन पर लिखा। स्वतंत्रता के बाद बहुत सारे पुरुष लेखकों ने भी नारी जीवन एवं उसकी समस्याओं से लोगो को परिचित कराया। जिनमें निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, अमरकांत, राजेन्द्र यादव आदि प्रमुख है। वर्तमान सेक्स जीवन की निकटम प्रमुख समस्या है, इसलिए हिंदी के उपन्यासकारों और कहानी-लेखकों ने सेक्स-सम्बन्ध को अत्यधिक महत्व दिया है। समकालीन नारी लेखिकाओं के उपन्यासों में इसका वर्णन देखने को मिलता है। उनकी दृष्टि में भी नारी-जीवन की सार्थकता सेक्स में ही समाप्त हो जाती है। वे जीवन की नई अर्थवत्ता खोज रही है, तो फिर इसका क्या अर्थ है? 'अर्थवत्ता' अपनी समग्रता में आनी चाहिए न कि केवल सेक्स के रूप में। स्त्री का शरीर उसका अपना है, उसकी पवित्रता या अपवित्रता का मानदंड क्या है, इसका संतोषजनक उत्तर अभी तक नहीं मिला है। अतः लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में पितृसत्तात्मक एवं पुरुषसत्तात्मक समाज से प्रश्न करते दिखाई पड़ती है। साथ ही नारी जीवन की समस्याओं को बड़े बारीकी से दर्शाने में वे सफल रही हैं।

ङ. मध्य-वर्ग का विघटन

स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में मध्य-वर्गों के विघटन के दृश्य देखने को मिलता है। यह विघटन विशेषत: मध्यम वर्गीय परिवारों में अधिक से अधिक हुआ है । भारत में आजादी के बाद मध्यवर्ग का विस्तार हुआ। मध्यवर्गीय परिवारों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। इसमें शिक्षित वर्ग अधिक उभर कर आये । यह वर्ग उच्च वर्ग की तरह न तो आर्थिक रूप से अधिक संपन्न थे न ही निम्न वर्ग की तरह आर्थिक रूप से एक दम पिछड़े थे। मगर इनकी चाह हमेशा उच्च वर्ग बनने की रहती है, जिसके कारण ये और अधिक पिसते थे। यही कारण है कि इनके जीवन में कई विघटन देखने को मिलता है। यह विघटन महानगरों में बसनेवाले लोगों में, केवल अपने बारे में सोचनेवाले लोगों में, अजनबी संबंधों में, आज के तेज जीवन में अपने को एडजस्ट न कर पानेवाले परिवारों में सबसे अधिक हुआ है । परिवार विघटन की समस्या सामान्य भारतीय जीवन की न होकर कुछ व्यक्तियों के भोगे हुए क्षणों या अनुभवों के यथार्थ पर आधारित है । इन उपन्यासों को महानगरों में रहनेवाले एक विशिष्ट वर्ग की व्यक्तिपरक उपन्यास कहे तो ज्यादा उचित होगा। केवल सेक्स, सेक्स जनित कुंठाओं, परिवार विघटन, व्यक्ति आदि की छोटी-सी दुनिया में विचरण करने वाले बहुसंख्यक उपन्यासकारों के अतिरिक्त कुछ उपन्यासकार ऐसे भी है, जो स्त्री-पुरुष के सेक्स-स्वातंत्र्य, परिवार आदि संबंधित परिवर्तित परिवेश में दायित्व बोध का परिचय दिया है। देश की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि विसंगतियों और भ्रष्टताओं पर दृष्टि किया है। साथ ही मध्ययुगीन सामंतवादी एवं पूँजीवादी संस्कारों पर प्रहार करते हुए नई पीढ़ी की आशा आकांक्षाओं का चित्रण किया है। आर्थिक विसंगतियों के कारण ही आज देश में चोर-बाजारी, घूसखोरी, भ्रष्टाचार, क्षुद्र स्वार्थ और संकीर्णता का बोलबाला है। मध्यवर्ग की यह विसंगतियाँ, मोहन राकेश के 'अंतराल', राजेन्द्र यादव के 'उखड़े हुए लोग', निर्मल वर्मा के 'लालटीन की छत', अमरकांत के 'सूखापत्ता' आदि उपन्यासों में दिखाई पड़ती है। औद्योगिकीकरण ने ग्रामीण जीवन को नया विकास दिया है और इस नजरिये से शहरों की अपेक्षा गाँवों को अधिक आधुनिक कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगा। गाँवों के नवीकरण ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया, जिसके साथ महंगाई और बेकारी है ही । अपने कथन को कहने के लिए इन उपन्यासकारों ने व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। दफ्तरी जीवन की नीरसता, ऊब और भ्रष्टता, स्त्री क्लर्कों के साथ

अफसरों का व्यवहार, आदिम जातियों का पिछड़ापन, आंचलिक जीवन का वैविध्य आदि का चित्रण भी इन उपन्यासों में मिलता है।

च. शिल्प

शिल्प की दृष्टि से सामयिक उपन्यास कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देश-काल वातावरण आदि परम्परा से चले आ रहे प्रतिमानों की अवहेलना करता है। इनके कथ्य न तो समय की सीमा में बद्ध है और न तो पारिवारिक पीठिका को बहुत महत्त्व दिया है। बल्कि यह तो एक विशेष परिवेश में जीवन-यापन करते हुए व्यक्ति के मन की खोज करता है। इसमें अभिव्यक्ति की नवीनता है। धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवां घोड़ा', गिरधर गोपाल का 'चांदनी के खंडहर' नवीन शिल्प की दृष्टि से उल्लेखनीय उपन्यास है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में विषय-वैविध्य के साथ-साथ शैलियों के विभिन्न रूप दिखाई पड़ते हैं। स्वतंत्रता के बाद आत्मकथात्मक शैली, डायरी शैली, पत्र शैली, वर्णात्मक शैली, संवाद शैली आदि विविध शैलियों में उपन्यास लिखे जा रहे हैं। आज का कथ्य जीवन के नजदीक है उसमें यथार्थ की पुट है। उपन्यास में अब किस्सागोई नहीं माना जाता है। पाठक स्वयं सब कुछ देखना चाहता है। वह श्रोता बनकर सुनने की अपेक्षा सहभोक्ता बनाना अधिक पसंद करता है। इस समय के उपन्यासकार अपना जीवन शेयर करना चाहता है। वह कथ्य को जीना चाहता है। इन्होंने स्त्री साहित्य के शिल्प शैली और सृजनात्मक सौंदर्य के मुद्दे को उठाया है। अवांगार्द नए शिल्प, नई शैली और नये सौन्दर्यबोध का भी प्रबल आग्रह रखते थे। जिसके कारण उन्होंने प्रचलित रचना प्रक्रिया का विकल्प प्रस्तुत करने के लिए प्रयत्न किया, लेकिन स्त्री साहित्य न शिल्प जागरूकता रखता है न ही इसे जरुरी माना है। वस्तुतः वह जिस वस्तु चेतना की प्रस्तुति कर रही है, उसकी अनुवर्ती प्रक्रिया के रूप में अपने आप ही पहले से जमा हुआ शिल्प ढूढ़ता जा रहा है। जिसे सत्तर के दशक में अभिजात साहित्य वाले (direct) सपाटबयानी कहते थे, लेकिन जो हिंदी लेखन की विशेष तथा भक्तिकाल की क्लासिक प्रक्रिया रही है, उसे अपनाकर स्त्री साहित्य ने अपने विचारों और भावों को अभिव्यक्त करना शुरू किया है, जो सीधे मन पर चोट करता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों की प्रवृत्तियों पर समयानुकूल परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा । स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी उपन्यास की सबसे बड़ी पहचान उसकी बदलती संवेदना है । बदलते जीवन मूल्यों एवं परिवर्तित विचार-भूमियों का सम्मिलित प्रभाव स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों पर पड़ा है । इन उपन्यासों में मध्य-वर्ग का विघटन, नारी का सामाजिक जीवन, स्त्री-पुरुष संबंध तथा संयुक्त परिवारों का विघटन सबसे अधिक चित्रित हुए हैं । स्त्री को केंद्र में रखकर वर्तमान अनेक उपन्यासों की रचना हो रहा है । आज की नौकरी पेशा स्त्री आर्थिक रूप से स्वतंत्र बन रही है और उसके सोचने का ढंग भी बदल रहा है । महिला उपन्यासकारों ने बहुत ही खुले तौर पर आज की यौन परक विस्फोटक स्थितियों का अंकन किया है । स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों की भाषा एवं शैली पहले की तुलना में अनेक परिवर्तन देखने को मिलता है ।

1. ग. मैत्रेयी पुष्पा के व्यक्तित्व एवं उनके उपन्यास

बीसवीं सदी के दसवें दशक के हिंदी उपन्यासकारों में मैत्रेयी पुष्पा का विशिष्ट स्थान है । अपनी प्रतिभा एवं लगन के कारण थोड़े ही समय में मैत्रेयी पुष्पा चर्चित उपन्यासकारों की श्रेणी में आने लगी । उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज के विविध रूपों और यथार्थ जीवन को व्यापक ढंग से प्रस्तुत किया है । वह एक साधारण परिवार में जन्मी थी और अपनी प्रतिभा से हिंदी साहित्य में एक सशक्त हस्ताक्षर बन गयी। उनका व्यक्तित्व साधारण परिवार के स्त्रियों को प्रेरणा देने वाला है ।

मैत्रेयी पुष्पा का व्यक्तित्व

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि, शिक्षा एवं परिवेश का विशिष्ट महत्त्व रहता है । यही सूक्ष्म तत्व मिलकर उसके व्यक्तित्त्व का निर्माण करते हैं । व्यक्तित्त्व को दो भागों में बाँटा जा सकता है, जैसे - बाह्य व्यक्तित्त्व और आंतरिक व्यक्तित्त्व । व्यक्ति के चेहरे, चाल-ढाल, खान-पान पहनावा आदि से बाह्य व्यक्तित्त्व बनता है तथा पारिवारिक संस्कार शिक्षा व परिवेश से आंतरिक व्यक्तित्त्व बनता है । किसी के भी संपूर्ण व्यक्तित्त्व के निर्माण में बाह्य व्यक्तित्त्व व आंतरिक व्यक्तित्त्व दोनों आवश्यक है, परंतु साहित्यकार के लिए आंतरिक व्यक्तित्त्व महत्त्वपूर्ण होता है बाह्य व्यक्तित्त्व समग्र व्यक्तित्त्व

का पहलू अवश्य है पर अपने आप में संपूर्ण नहीं है। साहित्यकार तथा पाठक का सीधा संबंध उसके साहित्य के माध्यम से ही रूबरू होते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा का जन्म 30 नवंबर 1944 में उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिले के सिकुर्रा गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम हीरालाल और माता का नाम कस्तूरी देवी है। उनके पिता बचपन में ही चल बसे, इसलिए उनका लालन-पालन यादव परिवार में हुआ था। ग्रामीण परिवेश में ही ये पली-बढ़ी। जिस परिवेश में मैत्रेयी पुष्पा का जन्म हुआ वहाँ स्त्रियों की गिनती मनुष्य में नहीं होती थी, स्वतंत्रता नाम भर की थी और वजूद केवल जीवित होने तक का था। देश आजाद हो गया था, लेकिन जमींदारी खत्म नहीं हुई थी। मैत्रेयी पुष्पा ने स्वयं कहा है कि "मेरे पिता ने जमींदार के विरुद्ध खड़े होकर कोड़ों की मार खायी, क्योंकि उनका अपराध गरीब होकर स्वभिमान से जीना व लगान न देने के का था। इसलिए वे सख्त सजा के पात्र थे, ऐसे ही दंडित लोगों के समूह गाँव कहलाता है, गाँव का दूसरा नाम था दरिद्रता और लाचारी, हम ऐसे लोगों के बीच पल बढ़ रहे थे।"[2]

मैत्रेयी पुष्पा की आरंभिक शिक्षा उनके घर से तीन मील दूर स्थित विद्यालय में हुई थी, पर उनका पढ़ाई- लिखाई में बिल्कुल मन नहीं लगता था। मैत्रेयी की माँ चाहती थी कि उनकी बेटी पढ़े और मैत्रेयी के नहीं पढ़ने के इस विचार का माँ ने विरोध किया। यथा- "माँ इस बात को समझ रही कि इस छोटी सी लड़की को पढ़ाई-लिखाई से उतनी ही नफरत है जितनी माँ को पढ़ने की चाहत है।"[3] अपनी माँ के बचपन से मैत्रेयी का बचपन बिल्कुल अलग था। उनकी माँ कस्तूरी का बचपन कठिन मेहनत से निराई-गुड़ाई करते हुए बीता था। उन्होंने अपने भाइयों के लिए अपनी सारी इच्छाएँ न्यौछावर कर दिया और अपने से अधिक उम्र के व्यक्ति के साथ विवाह किया, इसी आर्थिक अभाव के कारण मैत्रेयी ने अकेलेपन में अपना बचपन बिताया। उन्हें बचपन में अनेक कष्ट झेलना पड़ा। बचपन से ही मैत्रेयी लोक गीतों और लोक कथाओं में रस लेने में रूचि रखती थी। वह अपने दादी के साथ चंदना का गीत गाया करती थी। बहुत करने पर भी जब मैत्रेयी पुष्पा ने पढ़ाई-लिखाई में ध्यान नहीं दिया तब माँ ने मैत्रेयी के पढ़ने का प्रबंध अलीगढ़ के समाज कल्याण बोर्ड की संयोजिका के वहाँ किया, लेकिन वहाँ भी एक पुरुष के अभद्र व्यवहार से वह घर लौट आई। शिक्षा के शर्तों पर संघर्ष करती रही मैत्रेयी पुष्पा अपने आपको जैसे तैसे बचाती रही। शिक्षा और मैत्रेयी के प्रौढ़

होने का संघर्ष एक साथ चलता रहा है। एक साल जिला संयोजिका के घर में बीताने के बाद मैत्रयी में बहुत परिवर्तन आया। इसके बाद अलीगढ़ में रहने वाले गाँव के एक भाई के यहाँ कस्तूरी ने मैत्रेयी की शिक्षा का प्रबंध किया और वहाँ अपनी बेटी के साथ आठ दिन रह कर यह जाँच लिया कि यहाँ संयोजका के घर जैसा कोई खतरा नहीं है। सामाजिक परिवेश के कारण फिर उनकी शिक्षा में रूकावटे आने लगी। यथा- "माँ के अनुसार पढ़ाई-लिखाई में अड़चन आना ही सर्वनाश होना है। जबकि मैत्रेयी की समस्या यह है कि वह लड़की है। लड़की होने की सजा वह जगह-जगह पाएगी।"[4]

नागरिक शास्त्र विषय के साथ मैत्रेयी पुष्पा मोठ के.डी.बी इंटर कॉलेज की छात्रा बन गई और इंटरमिडिएट किया। स्कूली शिक्षा उनकी अव्यवस्थित रही, इसका वर्णन उन्होंने किया है - "मैत्रेयी के लिए दर कक्षा साथ पढ़ने वाले संगी साथियों की भी निरंतरता कहाँ रही ? हर दो साल पर स्कूल बदल जाता था।"[5] वह रोज 10 किलोमीटर साइकिल की यात्रा कर पढ़ने जाती थी। तमाम तरह के उलझनों और संघर्षों के बाद भी मैत्रेयी ने एम.ए (हिंदी साहित्य) बुन्देलखण्ड कॉलेज झाँसी से किया। मैत्रेयी पुष्पा आत्मनिर्भर होने की ललक में शिक्षा को मुक्ति का साधना मान कर उपहास झेलकर भी पढ़ती रही। लेकिन मुक्ति का साधन मैत्रेयी पुष्पा अपनी विवाह को मानती है। उन्होंने अपनी माँ के सामने ऐलान कर दिया माता जी, मेरी शादी कर दो। कस्तूरी ने बेटी के विवाह संबंधी मतभेद के बावजूद भी उसके के लिए वर की तलाश शुरू कर दी। कस्तूरी चाहती थी कि मैत्रेयी उस संघर्ष में शामिल हो, जो असमर्थों का धर्म है। इसके बाद समाज की सताई-खदेड़ी औरतों को सहारा देने वाली संस्था महिला मंडल में शामिल होकर उनकी सहायिका बनी। मैत्रेयी पुष्पा कस्तूरी की इस कामना की पूर्ति में कभी एक निष्ठा भाव से प्रवृत्त नजर आती है, तो कहीं बहुत दूर छिटकी हुई माँ के जीवन संघर्ष से आपसी प्रेम, घृणा, लगाव की अनुभूतियों से। मैत्रेयी पुष्पा को अपने व्यक्तित्त्व के अस्तित्व के लिए माँ के साथ-साथ चलना आवश्यक हो गया है। मैत्रेयी पुष्पा को अब तक कई सम्मान हासिल हो चुके हैं, जिनमें 'सुधा स्मृति सम्मान', 'कथा पुरस्कार', 'साहित्य कृति सम्मान', 'प्रेमचंद सम्मान', 'वीरसिंह जू देव पुरस्कार', 'कथाक्रम सम्मान', 'हिंदी अकादमी का साहित्य सम्मान', 'सरोजिनी नायडू पुरस्कार' और 'सार्क लिटरेरी अवार्ड' प्रमुख हैं।

मैत्रेयी पुष्पा का कृतित्त्व :

किसी भी साहित्यकार के व्यक्तित्त्व की झलक उनके कृत्तिव में दृष्टिगोचर होती है। मैत्रेयी पुष्पा ने भी अपने आस-पास के परिवेश को अपना रचनागत परिवेश बनाया, इसलिए उनकी कृत्तियों में बुंदेलखंड की पृष्ठभूमि परिलक्षित होती हैं। कविता लेखन से मैत्रेयी पुष्पा ने साहित्यिक लेखन की शुरुआत की। अशोक कुमार ने उनके बारे में लिखा है "उन्होंने शुरुआत देर से की है मगर लगता है कि उसकी भरपाई कर दी। मैत्रेयी की पहली कहानी तब छपी जब वे 46 साल की हो चुकी थी। मगर 9 साल में 5 उपन्यास और कहानी संग्रह देना तो यही साबित करता है।"[6] मैत्रेयी पुष्पा के कृतित्त्व पर अनेक प्रसिद्ध लेखकों ने अपना विचार निम्नलिखित रूप से अभिव्यक्त किया है –

विष्णु प्रभाकर ने इनकी आंचलिकता के संदर्भ में कहा है "आपने एक अंचल विशेष की भाषा से कथा उकेरी है, वह अत्यंत सजीव, सही हो उठी है और मन को व्यथित कर देती है।"[7]

परमानंद श्रीवास्तव ने मैत्रेयी के मानवीय भावों के संदर्भ में कहा है कि "मैत्रेयी में मानवीय भावों की सघन अंतरंगता और संबंधो की जटिलता को चित्रित करने की अनोखी क्षमता मौजूद है।"[8]

लोक-जीवन और संस्कृति से जुड़ी हुई मैत्रेयी पुष्पा गाँव से कभी विलग नहीं हुई है इसका चित्रण उनके साहित्य में देखने को मिलता है। इसी संदर्भ में ज्ञानरंजन ने कहा है "जिस लोक-जीवन से हमारी रचनात्मक धारा काफी पहले विमुख हो चुकी थी उसकी अनेक परतें मैत्रेयी पुष्पा ने खोल दी है। मैत्रेयी पुष्पा को उनकी मामूली लेखन जबरदस्त स्त्रियों के कारण याद किया जाएगा।"[9] ग्रामीण परिवेश में पली, घूंघट में छिपी नारी के संघर्षमय जीवन का सजीव चित्रण मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में मौजूद है। इस प्रकार प्रसिद्ध लेखकों की कलम से मैत्रेयी पुष्पा की मानसिकता, स्वभाव रचना-धर्मिता का व्यापक उद्घाटन है। मैत्रेयी पुष्पा द्वारा रचित उपन्यास इस प्रकार है – 1. बेतवा बहती रही (1994), 2. इदन्नमम (2000), 3. चाक (1997), 4. झुला नट (1999), 5. अल्मा कबूतरी (2000) , 6. अगनपाखी (2001), 7. विजन (2002), 8. कस्तूरी कुंडल बसै (2003), 9. कही ईसुरी फाग (2004)

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों का परिचयात्मक विवेचन :

बेतवा बहती रही

'बेतवा बहती रही' एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें नारी दुर्दशा का सशक्त चित्रण किया गया है। इस उपन्यास की नायिका उर्वशी है, उसके माध्यम से बताया गया है कि नारी की जिंदगी में दुखों का सिलसिला उस दिन से शुरू होती है जिस दिन उसका जन्म होता है और उस दिन ख़त्म होती है जिस दिन वह आखरी साँस लेती है। कथा की नायिका उर्वशी और मीरा घनिष्ठ सखी है। पितृ-गृह की विपन्नता के छाये में पली उर्वशी का विवाह सर्वदमन के साथ होता है। पुत्र देवेश से उसे मातृत्त्व सुख की प्राप्ति होती है, परंतु सर्वदमन की अकाल मृत्यु उसके जीवन के सभी सुखों को ग्रस लेती है और यही से उर्वशी की त्रासदी की कहानी शुरू होती है। उर्वशी का भाई अजित एक उपभोग की वस्तु के समान उसका सौदा दस बीघा जमीन लेकर बरजोरसिंह के साथ कर देता है जो की मीरा का पिता है। उर्वशी शारीरिक, मानसिक, व भावनात्मक प्रताड़ना को सहते हुए अंत में शोषक पुरुष समाज को मुँह तोड़ जवाब देती है और अपनी विधवा बहु का विवाह अपने छोटे पुत्र उदय से करती है। इससे पुरुष के अहं पर चोट पड़ती है तो वह तिलमिला जाता है, बरजोरसिंह उसे धीमा जहर देना शुरू करता है। इस तरह उसका कारुणिक अंत होता है। यह उपन्यास शोषण से घिरा समाज, राजनैतिक, दाँव-पेच, रूढ़ियाँ, अंधविश्वास, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, निर्धनता, अशिक्षा का व्यापक वर्णन प्रस्तुत करता है। साथ ही इसमें संयुक्त परिवार के विघटन को भी प्रस्तुत किया गया है। आज का संतान पारिवारिक उत्तरदायित्वों से छुटकारा पाना चाहता है और अकेले जीवन बिताना चाहता है। नारी जीवन के वास्तविकता उपन्यास में प्रस्तुत किया है। उपन्यास में पंक्ति है - "पितृसत्तात्मक समाज में नारी आज भी उपभोग की वस्तु बनकर रह गयी है। आज भी माना जाता है कि दमन, अन्याय, उत्पीड़न, हिंसा को जो जितना झेलेगी उतनी ही नारी महान गुणों वाली मानी जाएगी।"[10] इस उपन्यास की नायिका कभी सहनशील रूप में दिखती है तो कभी परम त्याग-प्रवण व करुणा की आगार बनकर समाज के सामने प्रस्तुत होती है। इसमें प्रेम, वासना व घृणा से भरी एक ऐसी व्यथा है, जो सम्पूर्ण अंचल को अपने अंदर समेत लेती है, जहाँ आदमी मजबूर भले ही है लेकिन सभ्यता के बनावटीपन से कोसों दूर है। बेतवा बचपन से ही उर्वशी और मीरा दोनों की सुख-दुख की साथी व संगिनी थी। उर्वशी

सोचती थी कि जब जीवन में दुःख के बादल आये तो वे समा जाएँ। सर्वदमन ने कहा था कि "उर्वशी तुम मुझे बेतवा की तरह क्यों लगती हो ? वैसी ही शीतल, कोमल, गहरी कभी चंचल लहरों सी।"[11] बेतवा की तरह ही उर्वशी का जीवन है। जिंदगी में इतने उतार-चढ़ाव आने पर भी उर्वशी का जीवन कभी घर की मर्यादा के लिए तो कभी सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए शोषण का शिकार बनती है। वह पुष्प के समान कोमल है, अपने को मिटाकर कष्ट सहने पर भी गम्भीर नजर आती है, पूर्ण कथा में बेतवा उसी प्रकार गातिमान है। मैत्रेयी पुष्पा ने स्वयं कहा है कि "मेरा एक उपन्यास 'बेतवा बहती रही' एक ऐसी कहानी है, जिसमें करुणाकलित ह्रदय की व्यथित रागिनी निरंतर बजती रहती है और आँसुओं की झालरें कथा की शोभा बनती है।"[12]

इदन्नमम

मैत्रेयी पुष्पा का बहुचर्चित उपन्यास इदन्नमम अंचल विशेष का ऐसा सजीव चित्रण प्रकट करती है। जिसे पढ़कर ह्रदय को द्रवित हो जाता है। इस उपन्यास की नायिका मंदाकिनी है, जिसने अँधेरी खोहों में मुट्ठी भर किरणों से सर्वत्र समाज में प्रकाश फैला दिया है। इसमें सामाजिक रूढ़ियाँ हैं, परम्पराएँ हैं, लेकिन समय आने पर उसके विरोध में साहस व संगठन का परिचय स्त्री द्वारा दिया गया है। मंदाकिनी के पिता महेंद्रसिंह की मृत्यु व माँ प्रेम का रत्ना यादव से सम्बन्ध स्थापित करना उसके जीवन के नियति चक्र का आरंभ माना जा सकता है, और साथ ही बूढी बुआ तथा असहाय बालिका मंदाकिनी की सुरुक्षा व संग्रक्ष्ण का भी प्रश्न उठाया गया है। रत्न यादव व अपनी बहू प्रेम से मंदाकिनी को बचाने के लिए बुवा श्यामली गाँव के पंचमसिंह के यहाँ शरण लेता है। श्यामली के गाँव में कुछ ऐसी घटनाएँ घटित होती है, जो कथा को विस्तार देती है जैसे मकरंद व मंदाकिनी का प्रेम, टूटन विरगवाँ के कैलाशी द्वारा मंदा का बलात्कार, साथ ही यशपाल का दूसरा विवाह व पहली पत्नी कुसमा का परित्याग एवं कुसमा का दावजू के साथ सम्बन्ध एवं गर्भवती होना आदि। रिश्ते आज के समाज में चरमरा गए है उसका स्थान लालचपन ने ले लिया है नहीं तो मुहंबोले मामा के द्वारा मंदा का बलात्कार नहीं होता और पंचमसिंह जैसे आदर्श पुरुष के छोटे भाई गोविन्द सिंह द्वारा सुरक्षा के एवज में उन आश्रितों व आसहयों से सब कुछ छीन लेना संभव नहीं हो पाता। मंदा सामाजिक रुढ़ियों से टकराती अपने कर्मक्षेत्र से विचलित नहीं होती। अपने पिता के

अधूरे स्वप्न को पूर्ण करने के लिए अस्पताल में डॉक्टर लाने का प्रयास करती है और उसमें सफल भी होती है। वह खूँखार अभिलाखसिंह जैसे व्यक्तियों का सामना करते हुए वह गाँव में सामूहिक चेतना लाने का भी प्रयास करती है। सगुना अपनी बचपन की सखी से आत्म प्रेरित होकर, अभिलाखसिंह की हत्या कर देती है जिसने उसकी अस्मिता और जीवन को नरक बनाया था।

प्रस्तुत उपन्यास संघर्ष प्रधान है। बुआ द्वारा मंदा की सुरक्षा के लिए संघर्ष, कुसमा द्वारा अपनी पुत्री पाने के लिए संघर्ष, कुसमा द्वारा अपने हक़ के लिए संघर्ष व सगुना द्वारा अस्मिता के लिए संघर्ष और अंत में मंदा के द्वारा स्त्रीत्व की रक्षा के लिए संघर्ष होता है। अतः मैत्रेयी पुष्पा ने अपने इस उपन्यास के माध्यम से प्रमाणित किया है कि अवसर मिलने पर दुर्बल नारी भी स्वच्छंद वातावरण में बल प्राप्त कर पुरुष शक्ति का सामना कर सकती है। नारी असहाय और अवश नहीं है, वह जीवन मूल्यों के कोई भी कार्य को करने की क्षमता अपने अंदर रखती है।

चाक

'चाक' ग्रामीण पृष्ठभूमि का उपन्यास होते हुए भी अपनी परम्परा से थोड़ा हटकर है। इसमें 21वीं सदी के राजनीतिक दाँव-पेच, छल, ईर्ष्या, द्वेष, विद्रोह, दमन का सजीव चित्रण मिलता है। इसमें स्त्री के समर्थ और शक्तिशाली होने की कहानी है। इसलिए कहा गया है कि "यह लड़ाई नारी मुक्ति या नारीवाद की सीमा नहीं बनती, बल्कि यह लड़ाई मनुष्य के अधिकारों की लड़ाई है। यह अपनी शक्ति को पहचानने की लड़ाई है। यह भारत की ग्रामीण जमीन पर घूंघट के भीतर दहकती आँखों की लड़ाई है जो सड़ी-गली मान्यताओं को भस्म कर देना चाहती है, साथ ही नैतिकता के पाखंडों को तोड़ती हुई नैतिकता की नई जमीन बनाती नजर आती है।"[13] मर्यादा और संस्कारों की सलाखों से बाहर निकलकर इसकी नायिका अपना वजूद स्थापित करती है। इसके लिए उसे परिवार तथा विवाह सम्बन्ध को भी दाँव पर रखना पड़ता है।'चाक' के संदर्भ में मैनेजर पाण्डेय ने कहा है "स्त्री की कथा दृष्टि ही नहीं, उसकी शैली और वाक्य रचना भी पुरुष से भिन्न होती है। इसका प्रमाण 'चाक' की कथा संरचना और कथा-भाषा में दिखाई देता है। 'चाक' की कथा एक स्तर पर गद्य में चलती है और इसके साथ दूसरे स्तर पर लोकगीतों में।"[14] पुरुष द्वारा स्त्री पर किये जा रहे अत्याचार का चित्रण 'चाक' में किया गया है। रेशम की हत्या, गुलकंदी के साथ तीन

लोगों कीहत्या इसका साक्षात प्रमाण है। दर्दपूर्ण इतिहास अतरपुर गाँव की नारियों का है। "रस्से के फंदे पर झूलती रुक्मणि, कुँए में कूदने वाली रामदेई, करबन की नदी में समाधिस्थ नारायणी ये औरतें सीता मैया की तरह भूमि प्रवेश कर अपने शील सतित्त्व के खातिर कुर्बान हो गई। यही नहीं न जाने कितने।"[15] इसी कड़ी की सूत्राधार रेशम भी है।

रेशम की हत्या से उपान्यास का प्रारम्भ होता है। सारंग रेशम की बहन होती है। वह अपनी बहन की न्याय की लड़ाई के लिए समाज, परिवार तथा अपने पति की भी अवहेलना सहन करती है परंतु अपने पथ से विमुख नहीं होती। डोरिया को रेशम की हत्या का कारण माना जाता है। इसके खिलाफ सारंग दुबारा अपील करती है। इस कारण डोरिया सारंग के साथ अभद्र व्यवहार करता है, लेकिन रंजित अपनी पत्नी को ही दोषी मानता है। इस पर सारंग का साथ देते है उनके देवर और ससुर गजाधर सिंह। इतना सब हो जाने पर भी सारंग अपने हौसले को नहीं छोड़ती और अपने दूर के रिश्तेदार कैलाशीसिंह को बुलाकर दंगल में डोरिया को पराजित करवाती है। पुत्र चंदन को डोरिया के दर से उसके जेठ दलवीर के यहाँ शहर भेजने का निर्णय पारिवार वाले करते है। सारंग मास्टर श्रीधर की नेकनियती से उस पर प्रभावित हो जाती है और यह बात उसके पति और गाँव वाले को रास नहीं आती। श्रीधर को रंजीत द्वारा प्रताड़ित किया जाता है, अपनी प्रताड़ना को संघर्ष स्वीकार करने वाले श्रीधर जब पूछने पर भी रंजीत का नाम नहीं लेते तो सारंग दैहिक रूप से भी श्रीधर को समर्पित हो जाती है। अपने पति के अत्याचार के कारण सारंग श्रीधर पर समर्पित हो जाती है।

इस उपन्यास में जाति व्यवस्था का प्रत्यक्ष नमूना देखने को मिलता है- "बिसुनदेवा एवं गुलकंदी जिन्हें इस समाज में अपना रास्ता स्वयं बनाने की सजा मिलती है। गाँव ने अपना परम्परागत न्याय ने गुलकन्दी और उसकी माँ हरिप्यारी की जान ले ली।"[16] गाँव की राजनीति के अतर्गत समाज में आपसी तनाव व गाँव की अपराधिक गातिविधयों को विस्तार से चित्रित किया गया है। श्रीधर को भ्रष्ट कार्यों में शामिल करने के लिए लोग तरह-तरह से दबाव डालते हैं। जिनमें गाँव के प्रधान के साथ रंजित भी शामिल है। यह बात सारंग को गँवारा नहीं होती। भंवर, गजाधर सिहं और श्रीधर के संयोग से सारंग अपने पति के खिलाफ खड़ी होती है। यह लड़ाई पति-पत्नी या स्त्री-पुरुष के बीच की नहीं बल्कि अन्याय की लड़ाई है,

क्योंकि गरीब को धन के लिए, निर्बल को बल के लिए, अज्ञानी को ज्ञान के लिए संघर्ष करना पड़ता है। सारंग केवल रंजीत की पत्नी ही नहीं, बल्कि एक स्त्री भी है जिसका अपना वजूद भी है। नारी आस्तित्व के लिए लड़ने वाली सांरग को गाँव में विभिन्न नामों से पुकारा जाने लगा बेशरम, हत्यारी, पति द्रोहिनी आदि नामों से जानी जाती है।

मैत्रेयी पुष्पा ने समाज के सामने जैसे साहसिक पात्र को रखकर समाज में चेतना जागृत करने का प्रयास किया है। रिश्ते की स्वतंत्रता स्त्री स्वतंत्रता के लिए सबसे पहले आवश्यक है। भारतीय समाज के लिए वस्तुत: चाक उपन्यास ठोस, नया अनवरत गढ़ता हुआ। अतः चाक समय से आगे जाने का प्रयास तथा पुरुष समाज में स्त्री की अपनी पहचना का संकल्प पात्र है।

झुला नट :-

'झूला नट' मैत्रेयी पुष्पा का छोटा उपन्यास है। उपन्यास में प्रमुख नारी पात्र में शिलो का महत्वपूर्ण स्थान है और पुरुष पात्रों में बालकिशन का विशिष्ट स्थान है। उपन्यास की कथा में सुमेर को प्रमुख पात्र के रूप में स्थान नहीं दिया गया है पर उसके बिना कथा चलाय मान भी नहीं होती। इस उपन्यास में पति द्वारा त्यागी गई स्त्री के जीवन की वास्तविक चित्रण है। सुमेर के साथ शिलो का ब्याह होता है पर ब्याह सिर्फ रस्म भर का होता है। सुमेर शिलो को अपनी पत्नी स्वीकार नहीं करता, केवल पिता द्वारा किये गए संबंधों के कारण उसे घर ले आता है, पर वे उसे छोड़ के शहर चला जाता है। तिरस्कृत होने के बाद भी शिलो उसे पुनः प्राप्त करने के लिए वर्त-उपवास, चम्पा दास के तंत्र-मन्त्र व सजने सँवरने के लिए तमाम तरीके अपनाती है, लेकिन वो सफल नहीं हो पाती। सुमेर शहर जाकर दूसरा विवाह कर लेता है। यह बात जब उसकी माँ को पता चलती है तो वो बालू से शिलो का विवाह करवा देती है। तत्पश्चात शिलो नयी रीतियों और परंपराओं में स्वयं को ढाल कर देवर के साथ पत्नी धर्म का निर्वाह करती है। पुराने सामाजिक ढाँचे के माध्यम से शिलो में अपने को शोषित महसूस करने के बाद अब उसमे नई चेतना और नया व्यक्तित्व उभरकर आया है।

शिलो एक ऐसी नारी पात्र है, जिसके पति ने उसे हमेशा उपेक्षितकिया और बार-बार ठुकराया है। इस उपन्यास में संयुक्त परिवार की समस्या और पारिवारिक संबंधों और उससे उपजे अंतर्विरोधी को सामाजिक वास्तविकता से जोड़ा गया है जिससे उपन्यास का स्वरूप, स्तर एवं कलात्मक सौन्दर्य में निखार आया है। रचना में दया और माया का वर्णन किया गया है जो मानवीय है, स्त्रियोचित है, सामाजिक मर्यादा का कुलीनता को बनाए रखने वाली भी। इसमें माँ द्वारा अपने छोटे बेटे की नौकरी बचाने व सुख संसार बनाए रखने की मंशा का भी वर्णन है। "यहाँ मूल प्रश्न समय और संवेदना की यात्रा का है, इस प्रश्न की इंगिति मैत्रेयी पुष्पा के झुला नट में मिलती है, जहाँ जीवन जगत समय के किसी ख़ास पहलू के संदर्भ की मानवीय नियति से रूबर होता है।"[17]

अल्मा कबूतरी :-

'अल्मा कबूतरी' जनजाति की स्मृति स्थापना का उपान्यास है। इसमें ऐसी जनजातियों का चित्रण किया गया है, जो गुमनामी के अँधेरों में अपना जीवन बिताते हैं। कबूतरी पुरुषों कि तरह जीवन जंगल, जेल में तथा शराब की अड्डों पर या बिस्तरों पर बीतती है। इस उपन्यास में ऐसी यथार्थ राग ध्वनियाँ मिलती है जो हृदय से निकलती है। उपन्यास की प्रुमख नायिका अल्मा है। अल्मा कबूतरी जनजाति के होकर यथार्थ की उस लिपि को मिटा देना चाहती है, जो कुविशेषणों से युक्त हैं। आज भी नारी को देह को वस्तु माना जाता है, इसका यथार्थ चित्रण कदमबाई के माध्यम से यक्त किया गया है। कदमबाई की यौवनावस्था के सौन्दर्य से उपन्यास का प्रारंभ होता है। पति जंगलिया की मौत तथा ममाराम माते की स्वार्थपूर्ण मेहरबानी से राणा की जन्म-कथा को विस्तार मिला है। प्रारंभ से ही राणा को शिक्षा मं रुचि थी। राणा के जीवन में रामसिंह शिक्षा का वरदान लेकर आता है। कदमबाई अपने पुत्र राणा को रामसिंह के पास गोरमछिया भेज देती है। राणा गोरमछिया में रहकर रामसिंह का शिष्य व उसकी पुत्री अल्मा का प्रेमी बनता है। रामसिंह की माँ भूरी बाई ने विभिन्न संघर्षों से उनका लालन-पालन किया। माँ कहती है-"विद्या रतन के आगे देह का खजाना भी कुछ नहीं।"[18] उनकी माँ अपने पति की मौत का बदला अपने बेटे के हाथों में ज्ञान का हथियार देकर करना चाहती थी। माँ की प्रेरणा से रामसिंह समाज में अपना वजूद स्थापित करता है, लेकिन राजनीति और भ्रष्टाचार की परिस्थितियों से वह एक दिन टूट जाता है और स्वयं अमानुषिकता

का शिकार हो जाता है। जब राणा को रामसिंह की पुलिस और डाकुओं के साथ मिली भगत का पता चलता है तो वह घृणा से वहाँ से भागकर डेरे पर आ जाता है। राणा के बिछड़ने और पिता की मौत के बाद अल्मा शोषण का शिकार होती है। धीरज की सहायता से अल्मा वहाँ से निकलने में कामयाब हो जाती है, परंतु बंदी बनती है। श्रीराम शास्त्री जो डाकू से मंत्री बने थे और इसकी सजा धीरज को अपनी मर्दानगी नष्ट करके चुकानी पड़ती है। अल्मा समय और परिस्थितियों के साथ समझौता करती है और श्रीराम शास्त्री की सहायक बनती है। श्रीराम शास्त्री की मौत के बाद उनकी पत्नी अल्मा शास्त्री के नाम से जानी जाती है। शास्त्री के निधन के बाद बबीना विधानसभा की जो सीट खाली हुई, उसके लिए प्रत्याशी श्रीमती अल्मा शास्त्री बनी। इस प्रकार अल्मा का विकास भूरी से प्रारंभ होकर, जिंदग़ी से जूझती हुई कदमबाई की रूपाकृति के बाद अघतन रूप है। अमानवीयता, क्रूरता, फरेब व स्वार्थीपन का रेशा-रेशा प्रकट करने में लेखिका पूर्ण रूप से सफल है।

अगनपाखी :-

'अगनपाखी' मैत्रेयी पुष्पा का प्रथम उपन्यास 'स्मृतिदंश' का परिवर्तित रूप है। कुछ लोग इसे स्मृतिदंश का विस्तार मानते हैं, परंतु यह उपन्यास स्मृतिदंश का पुनःपाठ है। पात्र और स्थान वहीहोने पर भी अगनपाखी की कथा नई है। इस उपन्यास का प्रारम्भ नायिका भुवनमोहिनी द्वारा कचहरी में दायर अर्जी तथा अंत दैनिक जागरण में छपी खबर अनूठा सती अनुष्ठान से होता है। अमानसिंह की बेटी भुवन उसकी बहन के हमउम्र बेटे चंदर के साथ खेलते हुए बड़ी हुई है। दोनों का एक दूसरे के पार्टी इतना आकर्षण हो जाता है कि दोनों शारीरिक सम्बन्ध बनाने को उद्यत हो जाते हैं लेकिन सामजिक बंधन और रिश्ता उन दोनों के बीच आड़े आ जाते हैं। भुवन का सौदा चंदर के पिता कर देते हैं और भुवन का विवाह छोटे कुंवर विजयसिंह से करा देते हैं जो शारीरिक व मानसिक रूप से बीमार है। यह सब वो अपने बेटे की नौकरी के लिए करते हैं। अपने सुख-दुख की चिंता छोड़कर भुवन अपने रोगी पागल पति की सेवा में अपने आपको लगा देती है। अपने भाई के इलाज के लिए भुवन का जेठ तंत्र-मन्त्र, टोना-टोटको का सहारा लेता है। उपन्यास में बड़े परिवारों का गरीब घरों से लड़की लेकर अपने अपाहिज बच्चों के लिए दासी खरिदने एवं संपत्ति हड़पने के घिनौने खेल को चित्रित किया गया है। भुवन उसका साक्षात प्रमाण है। अजय सिंह

भुवन का सती होने का षड्यंत्र रचता है, क्योंकि उसे भुवन की सारी संपत्ति हथियानी थी। सती होने से पूर्व भुवन देवी के मंदिर में जाती है। भुवन पुजारी की सहायता से मंदिर के चोर दरवाजे से बाहर निकलकर चन्द्र से मिलती है। अपने पति की संपत्ति का हक़ मांगती है। अपने अधिकारों के प्रति सजग यह नायिका समाज व्यवस्था के सामने अपने हथियार न डालकर सामना करती है और समाज को प्रत्यक्ष आइना दिखाती है कि नारी मात्र खिलौना नहीं है। सामाजिक जीवन का चित्रण इस उपन्यास में किया गया हैं। आज भी दुर्बल पत्नियों, विधवाओं व महिलाओं पर अत्याचार किया जाता है। आज भी समाज नारी का सौदा तथा विधवाओं की हत्या और सती प्रथा का समर्थन किया जाता है। इस उपन्यास में स्त्री-विमर्श के साथ साथ समाज विमर्श के हर पहलुओं का चित्रण किया गया है। अतः इस उपन्यास कोसमाज के आदर्श पूंजीवादी व सामती के बनते बिगड़ते संबंधों की कहानी कह सकते हैं।

विजन :-

यह उपन्यास शहरीकरण पर आधारित है।'विजन' उपन्यास नारी शक्ति को नई दिशा देने का एक साहसिक प्रयास है। इस उपन्यास में महानगरों की टूटी हुई मर्यादाओं का सशक्त चित्रण किया गया है। मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में प्राइवेट चिकित्सा 'शरण आई हॉस्पिटल' के बहाने अराजकता, धांधलेबाजी, अमानुषिकता का प्रत्यक्ष स्वरूप समाज के सामने रखा है। इस उपन्यास की नायिका नेहा है जो बहुत गरीब परिवार से है। 'शरण आई हॉस्पिटल' के मालिक डॉ. आर.पी. शरण के बेटे अजय के साथ नेहा का विवाह होता है। संस्कारिक बहू के रूप में नेहा परिवार का सुख पाकर अपने आपको धनी समझती है, लेकिन परत-दर-परत सारे सच उजागर होते जाते हैं। कथा में अजय की ग्रेजुएशन व पोस्ट ग्रेजुएशन के लिए पिता द्वारा शराब का नदियाँ बहाना, रेमंडम के थान खुलवाना एवं बोरी भर रूपए लुटाने से लेकर, निजी निर्माण करना,लूटपाट का प्रत्यक्ष आइना नेहा के सामने आता है। पितृसत्तात्मक समाज के जाल में घिरी डॉ. नेहा किसी दिखावे में रखे वस्तु बनकर रह जाती है। इस उपन्यास में नेहा के गुरु डॉ. अभा की भी कथा है जो नेहा को काफी प्रभावित करती है। डॉ. आभा ससुराल में टिक नहीं पाती है और वो अपने पति से भी दूर हो जाती है और अपना जीवन अकेले व्यतीत करने का निर्णय लेती है। दूसरी तरफ 'शरण आई सेंटर' में आँख के गलत ऑपरेशन के कारण एक व्यक्ति की मौत हो जाती है, तब अजय

और उसके पिता नेहा को बोलते है कि तुम डेथ डिक्लेयर कर दो। नेहा सोचती है अभी भी परम्परा बदली नहीं है और बदलेगी भी नहीं। पितृसत्तात्मक समाज में आज भी नारी की प्रतिभा का प्रयोग पुरुष करता आया है और अपने आपको श्रेष्ठ साबित करता रहा है। विजन क्या है ? डॉक्टर की दृष्टि, मरीज की दृष्टि, पैसे की दृष्टि, मानवता की दृष्टि या सबसे बढ़कर मौत की दृष्टि या 'विजन' जनहित अरण्य जैसे कुछ है ? उपन्यास के अंत में नेहा अस्वस्थ हो जाती है और लेखिका की उदार दृष्टि प्राप्त करती है।

कस्तूरी कुंडल बसै :-

यह एक औपन्यासिक आत्मकथा है। मैत्रेयी पुष्पा ने इसमें अपने जीवन की सत्य को बताया है चाहे व सुंदर न हो। इस आत्मकथा में उन्होंने ने अपने घावों और चोटों को खोलकर दिखलाया है। इसमें उन्होंने जीवन की गहरी पत्तों में छुपे सत्य को प्रकट किया है। ग्रामीण सुलभ सहजता एवं अनगढ़ता इसमें देखने को मिलती है। इसमें दो पीढ़ियों के जीवन मूल्यों के टकराव को दर्शया गया है, जो आपसी प्रेम, घृणा की अनुभूतियों से रची गई है। इसकी कथा अंग्रेजों के जमाने की है तथा मैत्रेयी और कस्तूरी से संबंधित है। लगान न भरने के कारण आठ सौ चाँदी के कलदारों के बदले कस्तूरी को बेच दिया जाता है। कस्तूरी को विवाह का सुख अधिक दिन तक रास नहीं आता है और उसे विधवापन मिलता है, परंतु कस्तूरी ने गुलामी को चुनौती दी और बिना घूंघट के हाथ में किताब कॉपी लेकर संघर्ष मार्ग का सामना किया। जितनी कस्तूरी को पढ़ने की चाहत थी मैत्रेयी को पढ़ाई से उतनी ही नफरत थी। मैत्रेयी ने अपने माँ को 18 साल की उम्र में बल दिया कि उसकी शादी करवा दे। कस्तूरी चाहती थी कि उसकी बेटी आत्म-निर्भर हो परंतु न चाहते हुए भी उन्होंने अपनी बेटी की शादी करवा दिया। शादी के बाद मैत्रेयी को सत्य का पता चलता है कि विवाह भी सुखद मोड़ नहीं है जिसे वह कल्पना के रंगों में संवारती रही। मैत्रेयी को ससुराल वाले कभी गवारुपन तो कभी खराब सुरत के दोष बताते रहते थे और हद तब हुई जब वह अठमासा कमजोर छोटी बच्ची को जन्म दिया। इस बच्ची के जन्म के बाद मैत्रेयी के सभी शुभ-लक्षण को कू-लक्षण माने जाने लगा। पति ने भी समाज की रीति-नीति की दुहाई दी। मैत्रेयी जब अपनी बच्ची की हक़ के लिए लड़ाई करती है तब उसे अपनी माँ की याद आती है और उसे अच्छे से जान पाती है। परन्तु अब वह अपनी माँ से उसकी पीड़ा भी नहीं कह सकती क्योंकि वह तो आंदोलन की अगुवा नेत्री बनकर जेल में बंद है। अपने जीवन के

अनेक क्षणों में मैत्रेयी अनेक दुःख कष्ट का सामना किया है। हिंदी साहित्य में मैत्रेयी की यह आत्म-कथात्मक उपन्यास पहली रचना है, जो स्पष्टवादिता और अपनी बेबाक ईमानदारी के कारण जाना जाता है।

कही ईसुरी फाग :-

इस उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने गाँव के परिवेश को प्रभावपूर्ण ढंग से चित्रित किया है। कथा का विस्तार लोक-कथा, लोक-गीत से हुआ है। इस उपन्यास का नायक ईसुरी है और रजऊ उसकी प्रेमिका है। इस उपन्यास में नियमों से आजाद का आधार बनाकर लेखिका ने ईसुरी और रजऊ के अद्भुत व विलक्षण प्रेम का प्रकटीकरण किया है। कथानक का विकास ईसुरी और रजऊ की प्रेम-कथा को केंद्र में रखकर होता है। मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में केवल ईसुरी और रजऊ के प्रेम का संवेदनात्मक रूप ही प्रकट नहीं किया, बल्कि समाज का चित्रण करके सामाजिक समस्याओं को भी उजागार किया है। उपन्यास की कहानी शोध छात्रा ऋतु व उसके रिसर्च गाइड डॉ. पाण्डेय की असहमतियों को व्यक्त करती है। ऋतु डॉ. पाण्डेय के निर्देशन में 'ईसुरी के काव्य में नारी सचेतना' शीर्षक पर शोध-कार्य करती है, परंतु उसके कार्य को शास्त्र सम्मत न मानकर उसे डॉक्टर की उपाधि प्रदान नहीं की जाती। शोध अध्ययन के फलस्वरूप ईसुरी और रजऊ के जीवन को परत दर परत खोलता है। रजऊ ईसुरी के प्रेम में इस तरह दीवानी होती है कि वे परिवार और समाज को त्याग कर और घर की चौखट लांघकर निकल जाती है। उपन्यास में नारी संघर्ष दिखाई देता है। रजऊ, ऋतु, सरस्वती देवी, मीरासिंह, गंगिया बेड़िनि, करिश्मा बेड़िनि, आबादी बेगम, आदि स्त्री चरित्र के माध्यम से लेखिका ने स्त्री संघर्ष को एक साथ चित्रण करने का प्रयास किया है।

मैत्रेयी पुष्पा के कहानी संग्रहों का परिचय :-

मैत्रेयी पुष्पा के तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हैं, जिनमे विभिन्न कहानियाँ संकलित है। उनका प्रथम कहानी संग्रह 'चिन्हार' है, जिसमें 12 कहानियाँ संकलित है – अपना अपना आकाश, सहचर, बहेलिये, मन नाही दस-बीस, हवा बदल चुकी है, बेटी, आक्षेप, कृतज्ञ, भंवर, सफर के बीच, केतकी चिन्हार

आदि। अपने प्रथम कहानी संग्रह में मैत्रेयी पुष्पा ने नारी चेतना को मुखरित किया है। इनकी इस संग्रह की सभी कहानियों में नारी के अनेक रूप सामने आता है।

दूसरा कहानी संग्रह 'ललमनियाँ' में दस कहानियाँ संकलित है- फैसला, सिस्टर, सेध, जब फूल नहीं खिलते, रिज्क, बोझ, पगला गई है भगवती, छांह, तुम किस की हो बिन्नी, ललमनियाँ। यह कहानी संग्रह सन 1995 में प्रकाशित हुआ था और इसकी पहली कहानी 'फैसला' हंस में प्रकाशित हुई थी। इस संकलन की कहानी 'ललमनियाँ' लोक-गीत एवं लोक नृत्य की परम्परा को प्रस्तुत करती है।

इनका तीसरा कहानी संग्रह है– 'गोमा हंसती है'। इसमें दस कहानियाँ संकलित है– शतरंज के खिलाड़ी, 'राय प्रवीण' बिछड़े हुए' प्रेम भाई एंड पार्टी', 'ताला खुला है पापा', 'सांप- सीडी, 'उजदारी', 'रास', 'बारहवीं रात','गोमा हंसती है'। इस संकलन की सभी कहानियों में नारियों की दासता और यथार्थ स्थिति पर प्रकाश डाला गया है और नारी मुक्ति की आकांक्षा के लिए प्रयासरत भी है। मैत्रेयी की कथा नायिकाएँ तिल-तिल कर समाप्त होती या दम तोड़ती नायिकाएँ न होकर हाड़-मांस की ऐसी स्त्रियाँ है, जो पारंपरिक समाज में कैद रहते हुए भी अपना रास्ता तलाशती है।

मैत्रेयी पुष्पा का नारी विमर्श का परिचय :

खुली खिड़कियाँ : समय के परिवर्तन के साथ-साथ रूढ़ परम्पराओं एवं संस्कृति में भी परिवर्तन होता रहा है। परिवर्तन का यह रूप इक्कीसवीं सदी में भी देखने को मिलता है। आज पहले की तुलना में समाज में काफी पविर्तन आये हैं। आज आधुनिक समाज में पुराने परम्पराओं एवं रूढ़ियों को नकारा जा रहा है, परंतु ऐसे समय में भी आज स्त्री पितृसत्ता की वर्षों से बंधी हुई मजबूत गांठ को खोल नहीं पा रहीं है। इसका कारण कही न कही पितृसत्ता को अपने वर्चस्व को कायम रहने की भावना है। स्त्री परिवार की धुरी है "धुरी को गाड़ी के वजन की गतिशीलता ने मनमाने ढंग से घिस डाला है और घिसते-घिसते औरत खत्म हो रही है। खत्म होते क्या रह जाएगी स्त्री ?"[19] मनुष्य ही नहीं जीव-जंतु भी अपने जीवन के लिए संघर्ष करते हैं, परन्तु पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री के लिए भाग्य को रच दिया कि वे अपनी मौत की मुल्तवी के लिए भी चुप्पी साधे रहती हैं। उसे परम्पराओं एवं आदर्शों के बोझ तले दबा दिया गया ताकि उसके करुण स्वर की

गुंजार बाहर ना आ सके । कभी आदर्शो की दुहाई देकर तो कभी परम्परों का वास्ता देकर स्त्री की भावनाओ का हनन किया जाता है । यदि आज स्त्री मुक्ति या स्वतंत्रता चाहती है तो उसे इस समाज का सामना करना होगा जो उसके बढ़ते कदमों को पीछे धकेलता है ।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने गहन चिंतन एवं अनुभव से स्त्री की पीड़ा, घुटन एवं आक्रोश को व्यक्त किया है – "मनुष्य स्त्री को अपनी संपत्ति मानते हुए उसे पशु एवं दलित बनाए रखकर मनमानी से भोगने वाले पुरुषों के साथ-साथ सुख-सुविधा सत्ता भोगने की लालसा में भ्रमित, श्रृंगार और विलास मंच पर औरत की मानसिकता को भी अपनी पैनी दृष्टि से उधेड़ती निरंतर दलदल में फँसते समाज के समक्ष गंभीर चिंता की दिशा प्रस्तुत करती है, साथ ही प्रखर चेतावनियाँ भी जारी करती है 'खुली खिडकियां में ।"[20]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों के द्वारा साहित्य में बहुविध योगदान दिया है । उन्होंने अपने उपन्यासों में गाँव और शहरों में रहने वाली सभी स्त्रियों के दु:ख-दर्द एवं वेदनाओं पर विशेष ध्यान दिया है । शोषण के खिलाप नारी जागरण मैत्रेयी पुष्पा का प्रधान विषय रहा है । उनके कई उपन्यासों में भारतीय नारी के एक नवीन चरित्र का बिम्ब उभरता है, जो अपने अधिकारों के प्रति भारतीय नारी में आयी चेतना का परिचायक है ।

संदर्भ :

1. स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ. 125
2. भारतवर्ष की चर्चित महिलाएँ, सुधा गोस्वामी, पृ. 208
3. कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ.25
4. कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 35
5. कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 41

6. कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, आप बीती, पृ. 5

7. पंखहीन, आत्मकथा, विष्णु प्रभाकर, पृ. 26

8. इंडिया टूडे, परमानंद श्रीवास्तव, 15 सितंबर 1999, पृ. 55

9. पहल, ज्ञानरंजन, जुलाई 2012, पृ. 06

10. बेतवा बहेती रही, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. - 99

11. बेतवा बहेती रही, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. - 99

12. हंस, जुलाई 2004, पृ. 35

13. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, कवर, पृ. 02 से

14. अक्षर 50, अक्टूबर-दिसंबर, पृ.-96

15. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 7

16. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ.-401

17. दस्तावेज, जुलाई-सितंबर 2001, पृ. - 43

18. अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 390

19. खुली खिड़कियाँ, खत्म होती स्त्री, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 83

20. खुली खिड़कियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, कवर पृ. 03 से

द्वितीय अध्याय

स्त्री जीवन के विविध रूप

2. क. अर्थ एवं स्वरूप

प्राचीन काल से ही 'स्त्री' के लिए एक नहीं अनेक शब्द मिलते हैं। 'स्त्री' शब्द अपने आप में ही बड़ा महत्त्वपूर्ण शब्द है। 'स्त्री' शब्द संस्कृत की 'स्तृ' धातु से बना है। संस्कृत में 'स्तृ' का अर्थ होता है, विस्तार करना, फैलाना। अब सवाल बनता है कि विस्तार किसका ? निश्चित ही गुणों का विस्तार और स्त्री गुण क्या है ? ये गुण है– प्रेम, दया, करुणा, पालन, प्रवृत्ति, त्याग, समर्पण और अथक परिश्रम आदि। यदि ध्यान से देखे तो सचमुच दुनिया की सारी स्त्रियों ने मानवता की रक्षा के लिए अपने इन्हीं सद्गुणों को दुनिया भर में प्रसारित करके अपने अत्यंत महत्त्वपूर्ण दायित्त्व का निर्वाह किया है। प्रेम को समूची दुनिया में फैलाना, स्त्री द्वारा निर्वाह किये जाने वाले महत्वपूर्ण कृत्यों में से एक है। प्रेम दुनिया के सबसे महत्त्वपूर्ण शब्दों में से एक है। यह प्रेम ही तो है, जिस पर पूरे मानवता का दायित्व टीका हुआ है। इस संसार में अनेक प्राणी है, जिनमें विचारवान मानव ही माना जाता है। मानव के अंतर्गत पुरुष और स्त्री दोनों ही आते हैं। मानव को भारतीय संस्कृति में मनु का संतान माना जाता है। मानव का मतलब होता है- 'मनु अपत्यम पुनाम' अर्थात् मनु से जो उत्पन्न हुए हैं।

पुरुष और स्त्री की उत्पति कैसे हुई, इस पर विभिन्न धर्मों के लोग अपना अलग-अलग मंतव्य देते हैं। हिन्दू धर्म में ऐसा माना जाता है कि पुरुष और स्त्री की उत्पति 'मनु तथा श्रद्धा' द्वारा हुई। मुस्लिम धर्म की मान्यता के अनुसार पुरुष और स्त्री की उत्पत्ति 'आदम और हौवा' से हुई। ईसाई धर्म के अनुसार भी पुरुष और स्त्री की उत्पत्ति 'आदम तथा हौवा' से ही मानी जाती है। अगर नारी शब्द को देखा जाए तो इसका प्रयोग सर्वप्रथम ऋग्वेद में मिलता है, जिसका अर्थ है 'याज्ञिक पत्नी'। ऋग्वेद में 'मना' शब्द नारी अर्थ का वाचक है। पुरुष इनका आदर करते हैं, अतः स्त्रियों को 'मना' कहते हैं। ऋग्वेद में 'ग्नाः' शब्द भी स्त्री का द्योतक है। ऋग्वेद में यह शब्द प्रायः देव या स्त्रियों के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। यास्क ने स्त्री को

'ग्ना' इसलिए कहा है कि पुरुष संसर्ग की कामना से इनके पास जाते हैं, गमन करते हैं। कालांतर में संस्कृत में पदबंध का प्रयोग नहीं मिलता। संस्कृत में 'गम्या' इसी 'ग्ना' का विकसित रूप है। ऋग्वेद में नारी शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। पर यज्ञ के अर्थ में 'नार्यः' शब्द का प्रयोग जरूर मिलता है। नारी शब्द 'नृ' अथवा नर से बना है। नृ+अञ्+ङीन +नारी। नर +ङीष = नारी। पतंजलि ने दोनों व्युत्पत्तियों को ठीक माना है। यास्क ने नर शब्द को नृत = नाचना से बनाया है। ऋग्वेद में 'नृ' शब्द का अर्थ वीरता का काम करना, दान देना और नेतृत्व करना है। नर शब्द का प्रयोग भी वीर, दाता और नेता के अर्थ में हुआ है। स्त्री का नाम भी इन्हीं विशेषताओं के कारण हुआ है। वे युद्ध और शिकार में वीरों की सहायिका रहती थी और अतिथियों एवं भिक्षुओं के सत्कार, दान आदि का भार इन्हीं पर था। ब्राह्मण ग्रन्थों में कहीं-कहीं नारिः पाठ मिलता है।

स्त्री को 'वामा' भी कहा गया है, क्योंकि वह सौंदर्य बिखेरती हैं। स्त्री वामा है क्योंकि वह प्रतिकूल बात कहती है। इसी तरह 'महिला' शब्द का अर्थ है- मह+इलच+आ = महिला। मह का अर्थ है पूजा। पूज्य होने के कारण स्त्री का महिला नाम पड़ा। व्युत्पत्तिपरक ढंग से स्त्री शब्द की परम्परा पर विचार करते समय यह बात साफ तौर पर उभरती है कि स्त्री सिर्फ शरीर नहीं है, बल्कि वह सामाजिक निर्मित है। वह कामुक वस्तु नहीं है तथा आनंद देने वाली वस्तु भी नहीं है। किन्तु कालान्तर में पितृसत्ता दृष्टिकोण से निर्मित पुरुष साहित्य में स्त्री सिर्फ शरीर एवं सौंदर्य का पर्याय बन गई। इसी तरह 'कन्या' शब्द की व्युत्पत्ति को यास्क ने 'कमु' धातु से निष्पन्न करते हुए कन्या को सब प्राणियों द्वारा चाही जाने वाली कहा है। कन्या और पुत्र में वैदिक काल में भेद नहीं था। बाद में यह भेद पैदा हुआ है। स्त्री के लिए जो नाम प्रचलित है, उनमें – वामा, अबला, सुन्दरी, प्रमदा, ललना, मानिनी प्रमुख है। जो स्त्री सौंदर्य बिखेरती है वह 'वामा' है। जिस स्त्री में शारीरिक बल की अपेक्षा मानसिक बल अधिक होता है, उसे 'अबला' कहते हैं। पुरुष का हृदय जिसे देखते ही गीला हो जाए, वह स्त्री 'सुंदरी' कहलाती है। पुरुष को उत्तेजित कर देने की विशेषता रखने वाली स्त्री 'प्रमदा' कही जाती है। जिस स्त्री में इच्छा या लालसा अधिक होती है, वह 'ललना' कहलाती है। क्षण-क्षण में रूठने और मानने वाली 'मानिनी' कहलाती है।

अष्टाध्यायी में 'स्त्रियाम' सूत्र के भाष्य में 'स्त्री' शब्द के कई पहलुओं पर विचार किया गया है। मसलन लोक में कुछ शारीरिक चिन्हों को स्त्री कहा जाता है। ये चिन्ह है- स्तन और केश। पतंजलि की दृष्टि में स्त्री का यह स्थूल रूप है। पतंजलि के अनुसार स्त्री को स्त्री इसलिए कहते हैं क्योंकि गर्भ की स्थिति उसके अंदर होती है। पतंजलि ने स्त्री का एक अन्य अर्थ में कहा कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध सबका समुच्चम ही स्त्री है। इसी तरह 'यु = जुटाना' धातु के आधार पर 'योपा' शब्द का स्त्री के लिए प्रयोग मिलता है। स्त्री को 'योपा' इसलिए कहते हैं कि वह अपने आपको पुरुष के साथ जोड़ती है।

भारतीय इतिहास का प्रारंभ वैदिक युग से होता है। वैदिक युग सांस्कृतिक रूप से उज्ज्वलतम युग था। इस युग में नारी का आदर समाज में था। नारी पुरुषों के साथ जीवन के क्षेत्र में कंधा से कंधा मिलाकर चलती थी। उसे पुरुष के समान अधिकार प्राप्त थे। गार्गी, मैत्रेयी, विश्वाश उस युग की ऐसी नारियाँ है, जिन्होंने अपनी प्रतिभा के बल पर, ऋषियों का पद प्राप्त किया था। उसके बाद धीरे-धीरे नारी के स्थिति में परिवर्तन आने लगे। समाज में स्त्री की महत्ता कम होने लगी और पुरुष का वर्चस्व बढ़ने लगा। स्त्री धीरे-धीरे पुरुषों की गुलाम होने लगी, उसके भोग-विलास की वस्तु बनती गई। पुरुषों पर उनका अधिकार संपत्ति के समान होने लगा। वह पूरी तरह पुरुष की बेड़ियों में बंधती चली गई। जब सामन्तकाल का आगमन हुआ तो नारियाँ देशी राजा की विलासिता का एक माध्यम बन गई। राजाओं महाराजाओं में सुंदर स्त्री पाने के लिए लड़ाइयाँ होने लगी। कोई राजा युद्ध में किसी राजा को हरा देता तो राज्य के साथ-साथ वहाँ की स्त्रियाँ भी उसकी गुलाम बन जाती थी, जिनका उपभोग वह अपने मनमाने ढंग से करता था। पितृसत्तात्मक समाज द्वारा बनाए गए सभी नियमों में, विशेषकर स्त्री को ही बंधन में बाँधा गया है। समाज में उसकी स्वतंत्रता से उसे वंचित रखा गया। पर्दा प्रथा, सती प्रथा, बाल-विवाह, दहेज प्रथा इत्यादि के नाम पर उसका शोषण किया गया। शिक्षा के अधिकार से उसे वंचित रखा गया।

भारत के पूरे इतिहास को देखे तो साफ पता चलता है कि समाज में नारी की क्या भूमिका रही होगी। एक दो को छोड़कर पूरे भारतीय इतिहास में नारी का कोई अस्तित्व ही नहीं है। चाहे वह आदिकाल हो, भक्तिकाल हो या रीतिकाल हर जगह वह श्रृंगार भोग विलासिता की वस्तु रही है। साहित्य में भी उसे श्रृंगारिक, रसिक, चंचल, मंदाक उत्पन्न करने वाली, माया, छलनी आदि रूपों में ही प्रस्तुत किया गया।

उसे हमेशा सौंदर्य पूर्ण, कोमल, मृगनयनी रूपों में देखा गया, जो पुरुषों का दिल बहलाने और भोग करने की एक सामग्री मात्र थी। स्त्री को उसकी शक्ति से सदा उसे अज्ञान रखा गया। परिवार और मातृत्व के बंधन में उसे इस प्रकार उलझाए रखा गया कि वह जिंदगी भर उसी में उलझी रह गई। उसके अंदर व्याप्त शक्ति का एहसास उसे कभी होने ही नहीं दिया गया।

आधुनिक काल के आगमन में स्त्री के स्वरुप में बदलाव आना शुरू हुआ। आधुनिकता के साथ-साथ स्त्री में आधुनिक चेतना का जन्म हुआ। प्रथम आधुनिक पुरुष के नाम से विख्यात राजा राममोहन राय द्वारा सती प्रथा पर रोक लगाना एवं स्त्री शिक्षा पर जोर देना, स्त्री दशा को सुधारने का पहला महत्त्वपूर्ण कदम है। भारत में जब विदेशी उपनिवेश स्थापित हो गया तो भारतीय स्त्री पाश्चत्य स्त्री से परिचित हुई। पाश्चत्य समाज की स्त्री की स्वतंत्रता और चेतना से भारतीय समाज की स्त्री भी प्रभावित हुई। साथ ही स्त्री शिक्षा के विकास के कारण उनमें चेतना आई। इससे नारी के अंदर अपने अस्तित्व का एवं उसमें समाज में अपने बराबरी की चेतना का विकास हुआ। उसे महसूस हुआ कि समाज में उन्हें दूसरा स्थान प्राप्त है। अतः अपने अधिकार के प्रति वे सचेत हुई और उसके स्वरूप में परिवर्तन आया। स्त्री के स्वरूप को हम निम्नलिखित रूपों में देख सकते हैं –

1. निर्भीकता और आत्मविश्वासी :-

वर्तमान युग की अगर बात करें तो आज स्त्री की दशा में बदलाव आया है। आज की स्त्री आत्मविश्वासी है। उसमें अपने प्रति किसी भी दुराचार के विरुद्ध आवाज उठाने की क्षमता है। प्राचीन समय की स्त्रियों के बारे में पूर्णतः से नहीं कह सकते थे कि उनमें आत्मविश्वास और निर्भीकता बनाकर जीवन जीने का विश्वास था, क्योंकि ऐसा कहना गलत होगा, उसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण भारत की वीरांगना महारानी लक्ष्मी बाई है। लेकिन सामान्य परिवार की महिला की स्थितियों के बारे में विचार करे तो उस समय बहुत कम महिलाएँ ऐसी होती थी, जो अपने विचारों को बिना डरे किसी के भी सामने रख सके। इसकी वजह पुरुष उस समय का समाज था। जो हमेशा स्त्री की आवाज को दबाने का प्रयास करता है। वर्तमान में उसके इस स्वरूप में बदलाव आए हैं, वे अपनी बात निर्भीकता और आत्माविश्वास से रखने लगी है।

2. रिश्ते :-

रिश्तों के क्षेत्र में भी आज की स्त्रियों में काफी बदलाव देखने को मिलते हैं। पहले स्त्री को रिश्ते बाँधके रखने वाले एक माध्यम के रूप में समझा जाता था। पुरानी पीढ़ी की स्त्री आज की स्त्री की तुलना में व्याप्त अनुभवी थी। रिश्तों के लिए स्वयं को समर्पित कर देती थी। मगर आज ऐसा देखने को कम मिलता है। उसके अंदर स्वयं की चिंता का भाव जाग गया है। यह एक बड़ा परिवर्तन स्त्री के स्वरूप में देखा जा सकता है।

3. समाज :-

आधुनिक युग के समाज में स्त्री को पूरे तो नहीं, मगर बहुत हद तक समाज को नजदीक से देखने के अवसर प्राप्त होते हैं, उन्हें बाहर निकलने की आजादी भी मिली हुई है, आज इस आजादी की वजह से ही महिलाएँ पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर चल पा रही है। भले अब भी समाज पुरुष प्रधान है, लेकिन थोड़ा ही सही पर बदलाव तो हुआ है। यही वजह है कि आज स्त्रियाँ हर क्षेत्र में कार्य करने में सक्षम हैं। पहले के समय में जहाँ स्त्रियों को केवल चहारदीवारी के अंदर बंद रखा जाता था, जिसके कारण उसके अंदर की प्रतिभा, गुण किसी के सामने नहीं आ पाते थे और उसकी इच्छाएँ, जीवन जीने की आकांक्षाएं दबी रह जाती थी। मगर आज समाज के साथ उसके स्वरूप में परिवर्तन आया है। कई स्थान में स्त्रियों की भागीदारी बढ़ी है और अपनी प्रतिभाओं को व्यक्त करने का अवसर स्त्री को मिला है।

4. प्रेम :-

प्रेम के क्षेत्र में भी स्त्री के स्वरुप में बदलाव हुआ है। आधुनिक समय में यदि कोई स्त्री प्रेम संबंध में हैं तो उसे समाज के सामने खड़े होकर मुकाबला करने तथा अपने खिलाफ आवाज उठाने वाले व्यक्तियों से सामना करने से नहीं डरती है। पहले की बात की जाए तो केवल अपने माता-पिता के द्वारा चुने हुए व्यक्ति से ही प्रेम संबंध बनाती थी और उन्हें अपना जीवन समर्पित कर देती थी। पति अगर शोषण अत्याचार करता है तो उसे चुपचाप सहती थी, लेकिन अब वैसा नहीं है। आज की स्त्री मेंअपने मन चाहे वर से प्रेम एवं विवाह करने का साहस उसमें आ गया है। अपने स्वाभिमान-संरक्षण और अस्मिता के रक्षा

के लिए शोषण और अत्याचार करने वाले पति, पिता और प्रेमी के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करने की क्षमता उसमें आ गई है। समाज में कई क्षेत्र ऐसे हैं, जहाँ आज भी स्त्री को दबना पड़ता है, मगर नगरों एवं विशेषकर शिक्षित स्त्रियों में चेतना आई है। इसका श्रेय शिक्षा के माध्यम से आई जागरूकता के साथ मीडिया को भी दिया जा सकता है.

5.शिक्षा :-

वैदिक काल से लेकर आज से करीब 50 या 100 साल पहले सामान्य परिवार से लेकर राजघराने तक की लड़कियों को शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त नहीं था। वर्तमान में इस स्वरूप में बदलाव आया है। आज स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने के अवसर मिले हैं। यही विशेष कारण है कि उन्हें अपनी प्रतिभा को लोगों के समक्ष लाने का अवसर प्राप्त हुआ है। ज्ञान-विज्ञान तकनीकी किसी भी क्षेत्र से स्त्रियाँ आज अचूकी नहीं रही है। शिक्षा के कारण उनमें चेतना आई है और वह अपने अंदर मौजूद प्रतिभा को पहचानी है। आर्थिक रूप से भी आज स्त्रियाँ आत्मनिर्भर हो रही है। पहले उसे अर्थ के लिए पुरुषों पर निर्भर रहना पड़ता था, यही कारण था कि सदा से वे दबी रहती थी। परिवर्तन के कारण ही आज तो कहीं-कहीं पुरुषों को स्त्री पर निर्भर रहना पड़ रहा है। स्त्री के स्वरुप में बदलाव का सबसे प्रमुख कारण उनका शिक्षित होना है।

इस तरह कहा जा सकता है कि वर्तमान स्त्रियों के स्वरूप में काफी परिवर्तन आया है। स्त्री पहले की तुलना में आज शिक्षित, स्वावलंबी और आत्मविश्वासी है। उसे वर्तमान समाज में कैसे पुरुषों के कंधो से कन्धा मिलाकर चलाना है तथा अपने घर-परिवार को देखते हुए बाहरी समाज में अपना अस्तित्व कैसे बनाना है, इससे आज की स्त्री पूरी तरह से वाकिफ है।

2. ख. भारतीय समाज और स्त्री

'समाज' शब्द 'सम' उपसर्ग पूर्व गव्यर्थक 'अज' धातु से 'ध' प्रत्यय होकर व्युत्पन्न होता है। 'तात्पर्यबीती' गति : उचित : सम्यग्रेपेण क्रियते जनैर्यास्मिन समाज:" अर्थात् जिसमें रहकर मनुष्य सम्यक रूप से अपनी प्रगति अर्थात् उन्नति करते हैं, उसे समाज कहते हैं। लगभग इसी अर्थ में समुदाय शब्द का

भी प्रयोग कर सकते हैं। यह 'सम' और उत उपसर्ग पूर्वक गत्यर्धक 'इन' धातु से 'घ' प्रत्यय होकर व्युत्पन्न होता है, उपर्युक्त व्युत्पति से समुदाय शब्द का अर्थ हुआ, ऊपर उठने का साधन।

'समाज' शब्द का प्रयोग बहुत सारे अर्थों में हुआ है तथा अनेक धारणाएँ भी समाज के संदर्भ में प्रचलित रही है। सामान्यतः इस शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के समूह अथवा झुण्डों के रूप में किया जाता है। व्यक्तियों के समूह के रूप में एकत्र होने से समाज नहीं बनता, इसके लिये आपसी सहयोग और व्यवस्था की अपेक्षा भी होती है। समाज का अर्थ वह सामाजिक संबंध है, जो एक दूसरे को प्रभावित करे। पहले ही कहा जा चुका है कि समाज एक से अधिक लोगों के समुदाय को कहते हैं। समाज में रहने वाले व्यक्ति मानवीय क्रिया करते हैं। मानवीय क्रियाकलाप में आचरण, निर्वाह तथा सामाजिक सुरक्षा की क्रियाएँ सम्मिलित होती है। समाज ऐसे लोगों का समूह है, जो अपने समूह के अंदर के लोगों के मुकाबले अन्य समूहों से काफी कम मेल-जोल रखता है। किसी भी समाज के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति एक दूसरे के प्रति परम्परा स्नेह तथा सहृदयता का भाव रखते हैं। दुनिया के सभी समाज अपनी एक अलग पहचान बनाते हुए अलग-अलग रस्मों-रिवाजों का पालन करते हैं।

समाज मानवीय अन्तः क्रियाओं की एक प्रणाली है। मानवीय क्रियाएँ हमेशा होती रहती है, चाहे वह चेतन अवस्था में हो या अचेतन अवस्था में हो। व्यक्ति कुछ लक्ष्यों की पूर्ति के प्रयास की अभिव्यक्ति है। मानव की कुछ नैसर्गिक तथा अर्जित आवश्यकताएँ होती है। जिसकी पूर्ति के अभाव में व्यक्ति में कुंठा और मानसिक तानव व्याप्त हो जाता है। वह इतनी पूर्ति स्वयं नहीं कर पाते तो उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने दीर्घ विकासक्रम में मनुष्य ने एक समष्टिगत व्यवस्था को विकसित किया है। इस व्यवस्था को ही समाज के नाम से संबोधित करते हैं। यह व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है, जहाँ वे निश्चित संबंध और विशिष्ट व्यवहार के माध्यम से एक दूसरे से बंधे होते हैं, क्योंकि समाज व्यक्तियों के पारम्परिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था है, इसलिए इसका कोई भूत स्वरूप नहीं होता, इसकी अवधारणा अनुभूतिमूलक है।

सामाजिक संगठन का रूप कभी भी शाश्वत नहीं बना रहता। समाज व्यक्तियों का समुच्चय है और भिन्न-भिन्न लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये समूहों में विभक्त है। अतः मानव मन और समूह मन की गतिशीलता

इसे हमेशा प्रभावित करती ही रहती है तो परिणामस्वरूप समाज परिवर्तनशील होता है। यह गतिशीलता ही समाज के विकास का मूल तत्व है। जिसकी संक्रमण की निरंतरता में सदस्यों का उपक्रम, उनकी सहमति और नूतनता से अनुकूलन की प्रवृत्ति क्रियाशील रहती है। समाज की अवधारणा मनुष्य की आवश्यकता पूर्ति पर आधारित है। यही उसे सम्बन्धों की ओर अग्रसर करती है। व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक संपूर्ण जीवन समाज में ही व्यतीत करता है। समाज से जुड़ी परम्पराओं एवं मान्यताओं का पालन भी करता है एवं कभी-कभी रुढ़ियों एवं जड़ता के प्रति विद्रोह भी करता है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं हेतु दूसरे मनुष्यों पर निर्भर रहता है। मनुष्य के विकास के लिये आपसी संबंधों में एकरूपता होना अनिवार्य है। सामजिक पर्यावरण और अन्तः क्रिया के अंतर्गत सामाजिक संबंधों का विश्लेषण किया है, वे एक दूसरे से पृथक होते हुए भी पूर्ण स्वतंत्र नहीं है।

समाजशास्त्रीय तथा वैज्ञानिक प्रयोग से समाज का अर्थ व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूह से न होकर व्यक्ति के परस्पर सम्बन्धों से होता है। कुछ विद्वानों द्वारा दी गयी समाज सम्बन्धी परिभाषाएँ उल्लेखनीय हैं :-

(1) मैकाइवर तथा पेज समाज की परिभाषा देते हुए कहते हैं –

"समाज व्यवहारों एवं प्रतिक्रियाओं के अधिकार एवं पारस्पारिक संबंधों के अनेक समूहों एवं भागों के मानव व्यवहार के नियंत्रणों एवं स्वाधीनताओं की व्यवस्था है।"[1]

(2) आगबर्न और निमकाफ के अनुसार –

"जब कभी दो या दो से अधिक व्यक्ति होकर एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं, तब वे समूह का निर्माण करते हैं।"[2]

(3) आर.एम विलियम के अनुसार –

"एक सामाजिक समूह मनुष्यों के उस निश्चित संग्रह को कहा जाता है, जो पास्परिक अन्तःक्रियाएं करते है और इस अंतर्क्रिया को इकाई रूप में ही दूसरों के द्वारा मानी होते हैं।"[3]

(4) 'सैंडरसन' के अनुसार –

"समूह दो या दो से अधिक उन व्यक्तियों का संग्रह है, जिनके बीच मनोवैज्ञानिक अंतःक्रियाओं के निश्चित प्रतिमान पाए जाते हैं। यह अपने सदस्यों और अन्य व्यक्तियों के द्वारा एक सत्ता के रूप में मानी होता है, क्योंकि यह सामूहिक व्यवहार का ही एक विशेष स्वरूप है।"[4]

(5) मिशेल के अनुसार –

"समूह का अर्थ व्यक्तियों की किसी भी उस छोटी अथवा बड़ी संस्था से है, जिनके बीच इस प्रकार के संबंध विद्यमान हो कि इन्हें सम्बद्ध इकाई के रूप में देखे जाने लगे।"[5]

इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि मनुष्य सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित है, अतः यह कहा गया है कि "मनुष्यों के पारस्परिक संबंधों का जाल सा बिछा रहता है। मानव संबंध के इस ताने-बाने इस तारतम्य इस सिलसिले को ही समाज में भी समानांतर परिवर्तन होता रहा है। एक तो गतिहीन व गतिशील है, दूसरी ओर इससे गतिहीन समाज में भी परिवर्तन होता है परंतु यह गतिशील से मंद व सूक्ष्म होता है। समाज के प्रमुख घटक माने जाते हैं – व्यक्ति, समुदाय, परिवार, सामाजिक, रिश्ते-नाते आदि । जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इन सब से जुड़ा हुआ है। समाज का आरंभिक रूप जितना सरल है उतनी ही विकास जटिल। सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आर्थिक आदि विषय समाज के अंतर्गत ही आते हैं, इन सबमें यदि थोड़ा भी परिवर्तन होता है तो समाज उससे प्रभावित होता है ।

भारतीय समाज बहुत पुराना और अत्यधिक जटिल है। प्रचलित अनुमान के अनुसार पाँच हजार वर्ष पूर्व की पहली ज्ञात सभ्यता के समय से आज तक लगभग पाँच हजार वर्षों की अवधि इस समाज में समाहित है। इस लंबी अवधि में विभिन्न प्रजातियों और विविध भाषा-परिवारों के अप्रवासियों की कई लहरें यहाँ आकर इसकी आबादी में घुल-मिल गई और इस समाज की विविधता, समृद्धि और जीवन्तता में अपना-अपना योगदान दिया है। भारत में स्त्रियों की स्थिति सदैव एक समान नहीं रही है। इसमें युग के अनुकूल परिवर्तन होते रहे हैं। उनकी स्थिति में वैदिक युग से लेकर आधुनिक काल तक अनेक उतार-चढ़ाव आते रहे हैं तथा उनके अधिकारों में उसी प्रकार बदलाव भी होते रहे हैं। वैदिक युग में स्त्रियों की

स्थिति बहुत मजबूत थी, परिवार तथा समाज में उन्हें सम्मान प्राप्त था। उनको शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। संपत्ति में उनको बराबरी का हक़ था। सभा व समितियों में स्वतन्त्रतापूर्व भाग लेती थी, तथापि ऋग्वेद में कुछ ऐसी उक्तियाँ भी हैं जो स्त्रियों के साथ कोई मित्रता नहीं है, उनके हृदय भेड़ियों के हृदय हैं। ऋग्वेद के अन्य कथन में स्त्रियों को दास की सेना का अस्त्र-शस्त्र कहा गया है। स्पष्ट है कि वैदिक काल में भी कहीं-न-कहीं स्त्रियों को नीची दृष्टि से देखा जाता था। फिर भी हिन्दू जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह समान रूप से प्रतिष्ठित थी। शिक्षा, धर्म, व्यक्तित्व और सामाजिकता विकास में उसका महान योगदान था। सांस्थानिक रूप से स्त्रियों की अवनति उत्तर वैदिककाल से शुरू हुई। उन पर अनेक प्रकार के निर्योग्यताओं का आरोपण कर दिया गया। उनके लिए निंदनीय शब्दों का प्रयोग होने लगा। उनकी स्वतंत्रता और आजादी पर अनेक प्रकार के रोक लगाये जाने लगे। मध्यकाल में इनकी स्थिति और भी दयनीय हो गयी। पर्दा प्रथा इस सीमा तक बढ़ गई की स्त्रियों के लिए कठोर एकांत नियम बना दिए गए। शिक्षण की सुविधा पूर्णरूपेण समाप्त हो गई।

नारी के संबंध में मनु का कथन "पितारक्षित कौमारे....न स्त्री स्वतंन्न्यम अर्हति।" पर उनका कथन "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" भी द्रष्टव्य है। वस्तुतः यह समस्या प्राचीनकाल से रही है। इसमें धर्म, संस्कृति साहित्य, परम्परा, रीतिरिवाज और शास्त्र को कारण माना गया है। भारतीय मनीषा समानाधिकार, समानता, प्रतियोगिता की बात नहीं करती वह सहयोगिता सहधर्मिता करती है। इसीसे परंपरा में संतुलन स्थापित हो सकता है।

वैदिक एवं उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों को गरिमामय स्थान प्राप्त था। उसे देवी, सहधर्मिणी, अर्द्धांगिनी, सहचरी मान जाता था। स्मृतिकाल में भी "यत्र नार्यस्तु पूजन्यते रमन्ते तत्र देवता" कहकर उसे सम्मानित स्थान प्रदान किया गया है। पौराणिक काल में शक्ति का स्वरूप मानकर उसकी आराधाना की जाती रही है। किन्तु 11वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी के बीच भारत में स्त्रियों की स्थिति दयनीय होती गई। एक तरह से यह स्त्रियों के सम्मान, विकास और सशक्तिकरण तथा अन्धकार का युग था। मुगल शासन, सामंती व्यवस्था, केन्द्रीय सत्ता का विनष्ट होना, विदेशी आक्रमण और शासकों की विलासितापूर्ण प्रवृत्ति ने स्त्रियों को उपभोग की वस्तु बना दिया था और उसके कारण बाल विवाह, पर्दा प्रथा, अशिक्षा आदि

विभिन्न सामाजिक कुरीतियों का समाज में प्रवेश हुआ, उसने स्त्री की स्थिति को हीन बना दिया तथा उनके निजी व सामाजिक जीवन को मैला कर दिया। धर्मशास्त्र का यह कथन नारी स्वतंत्रता का उदाहरण नहीं है, अपितु नारी के निर्बाध रूप स्वधर्म पालन कर सकने के लिए बाह्य आपत्तियों से उसकी रक्षा हेतु पुरुष समाज पर डाला गया उत्तरदायित्व है। इसलिए धर्मनिष्ठ पुरुष इसे भार न मानकर, धर्मरूप में स्वीकार कर अपना कल्याणकारी कर्त्तव्य समझता है। पौराणिक युग में नारी वैदिक युग के देवी पद से उतरकर सहधर्मिणी के स्थान पर आ गई थी। धार्मिक अनुष्ठानों और याज्ञिक कर्मों में उसकी स्थिति पुरुष के बराबर थी। क्योंकि कोई भी धार्मिक कार्य पत्नी के बिना नहीं किया जाता था। श्रीरामचन्द्र ने अश्वमेघ के समय सीता की प्रतिमा बनाकर यज्ञ किया था।

मध्यकाल में विदेशियों के आगमन से स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आई। अशिक्षा और रूढ़ियाँ घर की चार दीवारी में कैद होती गई और नारी एक अबला, रमणी और भोग्या बनकर रह गई। उसके बाद आर्य समाज आदि समाज-सेवी संस्थाओं ने नारी शिक्षा आदि के लिए प्रयास आरंभ किया। उन्नीसवीं सदीं के पूर्वार्द्ध में भारत के कुछ समाज सेवियों जैसे राजाराममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, ईश्वरचंद विद्यासागर तथा केशवचन्द्र सेन ने अत्याचारी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाई। इसी का परिणाम था सतीप्रथा 1829 ई. में, 1856 में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1891 में बहू विवाह रोकने के लिए वेटिव मैरिज एक्ट पास कराया। इस सभी परिणामों का समाज पर बहुत प्रभाव पड़ा। सदियों से नारी आने वाले समय में स्त्री जागरूकता में वृद्धि हुई और नारी संगठनों की शुरुआत हुई। जिनकी मुख्य मांग दहेज, बाल-विवाह जैसी कुरीतियों पर रोक, स्त्री अधिकार और स्त्री शिक्षा की माँग की गई।

स्त्रियों की स्थिति में सुधार ब्रिटिश काल से देखने को मिलता है। ब्रिटिश शासन के समय में हमारे समाज की सामाजिक व आर्थिक संरचनाओं में अनेक परिवर्तन हुए। ब्रिटिश शासन के 200 वर्षों की अवधि में स्त्रियों के जीवन में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष अनेक सुधार आये। औद्योगिकीकरण, शिक्षा का विस्तार, सामाजिक आंदोलन व स्त्री संगठनों का उदय व सामाजिक विधानों ने स्त्रियों की दशा में बड़ी सीमा तक सुधार की ठोस शुरुआत की।

भारतीय समाज की सबसे बड़ी विशेषता उसकी अनेकता में एकता की भावना है। यहाँ विभिन्न वर्गों और प्रकार के लोग निवास करते हैं। सबके अपने-अपने परम्पराएँ प्रचलित हैं। यहाँ के अधिकांश भाग का धर्म वैदिक धर्म है। विदेशी इस समाज में आए भी इस समाज से मिलते चले गए। कुछ हद तक उन्होंने अपनी मौलिकता भी बनाये रखी। भारतीय समाज में स्त्रियों का बहुविधि अपना विशेष स्थान रहा है। वास्त्व में स्त्री भारतीयों के लिए और नारी की कल्पलता है। इस समाज में पुरुष नारी के लिए और नारी पुरुष के लिए सर्वस्व त्याग करने के लिए उद्यत है। दोनों के जीवन में यही त्याग की भावना जीवन को सुखमय बनाती है। नारी करुणा, दया, प्रेम आदि मानवीय गुणों की देवी है। वह समाज की मार्गदर्शिका भी है। वास्तव में नारी का स्थान भारतीय समाज में अनुपम है। नारी का सम्मान करना एवं उस की रक्षा करना हमारी समाज की सबसे पुरानी संस्कृति रही है। इस समाज में नारी की स्थिति अत्यंत विरोधाभासी रही है यह एक विड़म्बना ही है। नारी को एक तरफ शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया तो वही दूसरी ओर उसे 'बेचारी अबला' भी कहा जाता है। इस सन्दर्भ में मैथिलीशरण गुप्त जी का यह कथन उल्लेखनीय है-

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,

आंचल में है दूध और आँखों में पानी।"[6]

इन दो प्रकार की धारणाओं से नारी के स्वतंत्र विकास में बाधा पहुँची है। नारी को इंसान के रूप में देखने के प्रयास प्राचीन काल से ही संभवतः कम ही हुए है। पुरुष के बराबर अधिकार एवं स्थान की माँग ने भी नारी को बहुत छला है। अतः वह आज तक 'मानवीय' का स्थान प्राप्त करने से भी वंचित रही है।

इस समाज में नारी की सदियों से ही अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। भारतीय समाज उसी के बलबूते पर खड़ा है। भिन्न- भिन्न रूपों में नारी ने अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। चाहे वह सीता हो या झाँसी की रानी हो, इंद्रिरा गाँधी हो या सरोजनी नायडू हो। लेकिन फिर भी वह इस क्रूर समाज में सदियों से शोषण एवं अत्याचारों का शिकार होती आई है।

भारतीय संविधान में नारी के हितों की रक्षा करने के लिए एवं समानता तथा न्याय दिलाने के लिए आरक्षण की व्यवस्था भी की गई है। इतना सब करने के बाद भी नारी दिन प्रतिदिन शोषण एवं अत्याचारों

का शिकार हो रही है। समय की धार पर चलती हुई नारी सदियों से अनेक विड़म्बनाओं और विसंगतियों के बीच जी रही है। पूज्या भोगी, सहचरी, सहधर्मिणी, माँ, बहन एवं अर्धांगिनी इन सभी रूपों में उसका शोषित एवं दमित स्वरूप मिलता है। वैदिक काल में अपनी विद्वत्ता के लिए सम्मान पाने वाली नारी मुगलकाल में राजनिवासों की शोभा बनकर रह गई। लेकिन नारियों के संघर्षों से उनकी योग्यता से बंधनों की कड़ियाँ चरमरा गई। पुरुष प्रधान समाज उनकी क्षमताओं को रोक नहीं पाया। स्वतंत्रता संग्राम में भारतीय नारियों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान में बराबरी का दर्जा प्राप्त किया।

भारतीय नारियों ने राम राज्य से लेकर अब तक एक लंबा संघर्षमय सफर किया है। किन्तु पुरुष के साथ जीवन के हर क्षेत्र में कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाली नारी की सामाजिक स्थिति में फिर भी परिवर्तन 'ना' के बराबर हुई है। घर बाहर की दोहरी जिम्मेदारी निभाने वाली स्त्रियों से यह पुरुष प्रधान समाज चाहता है कि वह अपने को पुरुषों के समक्ष दोयम दर्जे का समझे। लेकिन जो आज की संघर्षशील स्त्रियाँ है, वे इन परस्पर विरोधी अपेक्षाओं को आसानी से स्वीकार नहीं करती। सीता और गांधारी के आदर्शों का उदाहरण जब आज की नारियों के सामने दिया जाता, तब वह इन चरित्रों के हर पहलू को ज्यों-का-त्यों स्वीकारने में असमर्थ रहती है। व्यक्ति के जीवन में देश, काल परिवेश और आवश्यकताओं का बहुत महत्त्व है, समाज इनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। आज का समय और सीता के समय के सामाजिक परिवेश में धरती-आसमान का अंतर है। सीता बनना आज के परिवेश में बड़ा कठिन है।

भारतीय समाज में राम राज्य से लेकर अब तक बहुत कुछ बदलाव हुआ है। उस समय की स्त्री को पतिवर्ता और कर्तव्य परायण जरुर होना चाहिए था इन सभी गुणों पर सीता खरी उतरती थी। फिर भी सीता की पहचान अपने पति व बच्चों के कारण ही थी, जैसे- राम की पत्नी, लवकुश की माँ। उनकी पूरी जिंदगी उनके परिवार के इर्द-गिर्द ही सीमित रह गई, वह समाज की अपेक्षाओं को पूरी करती रहीं। किन्तु आज की जो स्त्रियाँ है वे एक व्यक्ति के रूप में अपनी पहचान बनाना चाहती हैं। वे सिर्फ एक पत्नी, एक माँ, एक बेटी के रोल तक ही सीमित नहीं रहना चाहती। आज की जो स्त्रियाँ हैं समाज की सक्रिय सदस्य बनना चाहती है।

इस तरह देखा जाता है कि भारतीय समाज में स्त्री का अस्तित्व हमेशा सर्वमान्य रहा है। भारतीय समाज में वैदिक काल से लेकर आज तक स्त्री को हमेशा पूजनीय दृष्टि से ही देखा गया है। हमारे देश में कभी कभी राजनीतिक परिस्थितियों के चलते स्त्री दृष्टि में गिरावट देखने को मिलता है पर सम्यक रूप से देखा जाये तो कहा जा सकता है कि स्त्री का स्थान पहले भी सर्वोत्तम था और आज भी ऊँचा है। उसकी प्रगति के लिए भारत सरकार हमेशा कुछ न कुछ योजना बनाती ही रहती है।

2. ग. समकालीन समाज और स्त्री

समकालीनता का सीधा अर्थ है- अपने समय के प्रति ईमानदार होना। समकालीन साहित्यकारों ने संकटों की परवाह किये बिना क्रूर वास्तविकता से अभेद संबंध स्थापित करके समय को चुनौती दी है। अपनी रचनाओं के द्वारा समाज की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत की है । वैश्विकरण, निजीकरण और उदारीकरण का जबर्दस्त विश्वव्यापी प्रभाव पड़ा है। समकालीन परिवेश में नारी विमर्श पर साहित्यकारों ने अपनी लेखनी चलाई है। विश्व व्यापी सभ्यता के दुष्परिणाम हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक माहौल पर पड़े हैं । विघटनकारी मानसिकता ने मानव को 'पशु' बना दिया है । अविश्वास, घुटन, संत्रास, यातना, अराजकता तथा मूल्यहीनता के परिवेश में असहाय-सा व्यक्ति बिखर रहा है।

समकालीन साहित्य का केन्द्रीय विषय जीवन है। हिंदी उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आत्मकथा और नाट्य लेखन में नारी विमर्श के अनेक बिंदु मिलते हैं। परस्परविरोधी भावनाएँ मिलती है। सदियों से अभाव, अवहेलना, शोषण, अत्याचार संवेदनहीन एवं अमानवीय अभिशापों को ढोती आ रही महिला की पूर्ववत् स्थिति का निरूपण है तो दूसरे और इन अभिषापों से मुक्त होने का संघर्ष भी मिलता है। विद्रोह और असंतोष का स्वर भी मुखरित है। सयुंक्त राष्ट्र के मानव अधिकार आयोग द्वारा मानवीय अधिकारों के घोषणा-पत्र से महिलाओं की स्थिति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। उदाहरण के रूप में वह अपनी पहचान 'मनुष्य' के रूप में करना चाहती है। पुरुष के रु-ब-रु खड़े होकर मानवीय संदर्भ में अपनी अस्मिता की पहचान की न्याय की दुहाई ना देकर स्वयं न्याय छीनने की जद्दोजहद अतीत और वर्तमान की विसंगतियों को ध्वस्त कर सुखद भविष्य की नींव धरने की सुकून भरी चाहत का आशावादी संकेत हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक स्त्रियों की निम्न दशा के प्रमुख कारण अशिक्षा, आर्थिक, निर्भरता, धार्मिक, निषेध, जाति बंधन, स्त्री नेतृत्व का अभाव तथा पुरुषों का उनके प्रति अनुरुची दृष्टिकोण आदि थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से सरकार द्वारा उनकी आर्थिक, सामाजिक शैक्षणिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार लाने तथा उन्हें विकास की मुख्य धारा में समाहित करने हेतु अनेक कल्याणकारी योजनाओं और विकासात्मक कार्यक्रमों का संचालन किया गया । महिलाओं को विकास की अखिल धारा में प्रवाहित करने, शिक्षा के समुचित अवसर उपलब्ध कराकर उन्हें अपने अधिकारों और दायित्वों के प्रति सजग करते हुए उनकी सोच में परिवर्तन लाया गया है।

उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल से लेकर इक्कीसवीं सदी आते-आते पुनः महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ । वर्तमान में महिलाओं ने शैक्षिक, राजनीतिक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, प्रशासनिक, खेलकूद आदि विविध क्षेत्रों में उपलब्धियों के नए आयाम हासिल की हैं।

समकालीन हिंदी साहित्य को जिस प्रवृत्ति ने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बनाया वह है रचना और रचना के क्षेत्र में स्त्री समाज की उपस्थिति। सन 60 के बाद साहित्य, खासकर कथा के क्षेत्र में आयी अपितु स्त्री केंद्रित संगठनों और बामपंथी आंदोलनों से जुड़कर रचना और विचार की दुनिया में स्त्री की पहचान को स्थापित भी किया है। इसमें पश्चिमी नारीवादी आंदोलनों का भी इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। जहाँ सिमोन द बोउवा, केट मिलेट, बेट्टी फ्राइडेन, जर्मन ग्रीयर आदि ने आंदोलनों के जरिये स्त्री की अधिकारों की वकालत की है। इसी प्रकार लिंग के आधारों पर भेद-बहाव को प्रतिबंधित करवाने की दिशा में इन महिला विचारकों ने गंभीर पहल की।

समकालीन हिंदी साहित्य के माध्यम से लेखिकाओं ने नारी जीवन के विविध प्रश्नों,उत्पीड़न के साथ एक नए रूप को उसकी अस्मिता को ऊँचाइयों के साथ रेखांकित किया है। यह नारियाँ समाज में अपनी स्वायत्तता स्थापित करना चाहती है। रुढ़िवादी संस्कारों के पीछे आँख बंद करके चलना छोड़ चुकी है। अब नारी ने यह समझ लिया हैं – 'न वह पैर की जूती है और न दासी।" विवाह संस्था अब उनके समाज व्यवस्था की मजबूत शर्त न होकर समानता का अधिकार है। वह अपने कर्त्तव्यों को पहचान चुकी है, अब उसे कोई गुमराह नहीं कर सकता।

समकालीन समय में नारी मध्ययुग की माया, रीतिकाल की कठपुतली बनकर पिता, पुत्र, पति के सहारे जीने वाली नहीं रही है। आज नारी टूटकर बिखरने के बजाय लड़ने की हिम्मत जुटा चुकी है। 'कठगुलाब' की असीमा बहुत छोटी उम्र में यह जान चुकी है। असीमा के विचार से कराटे सीखना मोक्ष पाने के समान है। वह सोचती है- हर औरत को मारपीट करना आना चाहिए। वह नमिता के क्रूर पति पर अपने कराटे के दाँव पेंच कुछ ऐसे आजमाती है कि कुछ देर बाद ही उसे लकवा हो जाता है। असीमा को नारी के जो शक्ति है, वह पसंद है। वह अपनी लड़ाई खुद लड़ना जानती है। प्रभा खेतान के 'छिन्नमस्ता' उपन्यास की नायिका प्रिया मारवाड़ी परिवारों में चल रहे बहुविवाह प्रथा के कारण दूसरी औरत को मिलने वाले दूसरे दर्जे की स्थिति, बलात्कारों की अनवरत सिलसिला, पति सास का कठोर नियमों आदि से ऊबकर वह छिन्नमस्ता देवी बनकर अपने वक्त,परिवेश और पति से लड़ती हुई नितांत विसंगत परिस्थितियों में भी अपना मार्ग चुन लेती है।

आज नारी जीवन के हर क्षेत्र में कदम बढ़ा रही है। आज की नारी अपने कर्त्तव्यों को समझती है, अपितु अपने सामाजिक दायित्वों के प्रति भी सजग है। आज नारी अपने अधिकारों के प्रति आवाज उठा रही है। आवाज उठाने का कारण वह शिक्षित तथा दुनिया से रू-ब-रू हो रही है। शिक्षा के चलते नारी जागरूक हुई और इस जागरूकता ने नारी के कार्यक्षेत्र की सीमा को घर की चारदीवारी से बाहर की दुनिया तक फैला दिया। शिक्षा के बढ़ते प्रभाव के चलते आज नारी भी अपने कैरियर के प्रति संजीदा है। वर्तमान समय के हर एक क्षेत्र में नारी आगे बढ़ रही है। वर्तमान में नारी को विभिन्न क्षेत्रों में देखे जा सकते हैं –

शिक्षा के क्षेत्र में नारी :-

स्त्री शिक्षा, स्त्री और शिक्षा को अनिवार्य रूप से जोड़ने वाली अवधारणा है। भारत में मध्य तथा पुनर्जागरण काल के दौरान से स्त्री को पुरुषों से अलग तरह की शिक्षा देने की अवधारणा विकसित हुई थी। लेकिन वर्तमान समय में स्त्री तथा पुरुष के लिए शिक्षा समान और सर्वमान्य हो गई। भारत में वैदिक काल से ही स्त्री शिक्षा का व्यापक प्रचार था। उसी समय से नारी धीरे-धीरे शिक्षित होती गई। पुनर्जागरण के दौर में भारत में स्त्री शिक्षा को नए सिरे से महत्त्व मिलने लगा। ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा सन 1854 में स्त्री शिक्षा को स्वीकार किया गया। स्त्री शिक्षा प्रसार होने से नारी आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनने लगी।

शिक्षित स्त्री अपने पति के साथ कंधे से कंधा मिला कर चलने में समक्ष होने लगी। 21वीं सदीं आते-आते अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों के प्रति सचेत हो गई। भारत में शिक्षा का महत्त्व इसलिए अधिक है, क्योंकि देश की भावी पीढ़ी को योग्य बनाने के कार्य में शिक्षा उचित मार्ग दर्शन कर सकती है। यदि माता सुशिक्षित होगी, वह अपनी संतान को भी शिक्षित बनाएगी साथ ही संतान को उचित संस्कार और योग्य व्यवहार से पोषित करेगी। इतिहास में इसकी उदाहरण देखी जा सकती है। महान सम्राट अशोक को अहिंसा, दया, प्रेम, भाव यह सभी अपनी माता से प्राप्त हुआ था। माता ने उन्हें इन संस्कारों से पोषित किया था। माता ही बच्चों के कोमल व उर्बर मन मस्तिक में उन संस्कारों के बीज बो सकती है। आदर्श सुशिक्षित गृहणी परिवार का आभूषण और समाज का गौरव होती है। स्त्री घर के साथ-साथ अपने परिवार का भी देख-रेख करती है।

आज नारी शिक्षित होकर घर-परिवार के साथ-साथ पूरे दुनिया में अपना के अलग स्थान बना रही है। भारतीय मूल की कल्पना चावला अन्तरिक्ष में जाने वाली पहली महिला बनी यह स्त्रियों के लिए गौरव की बात है। उदाहरण के रूप में देखा जाए तो वह शिक्षा के बल पर ही अपनी अलग पहचान बनाई। वह देश तथा समाज की तरक्की में अमूल्य योगदान दिया जिसे भुलाया नहीं जा सकता है।

नारी का सम्मान करना एवं उसके हितों की रक्षा करना हमारे देश की सदियों पुरानी संस्कृति है। यह एक विड़म्बना ही है कि भारतीय समाज में नारी की स्थिति अत्यंत विरोधाभाषी रही है। नारी बहुत सारे संघर्ष करते हुए आगे बढ़ती गई। आज की संघर्षशील नारी परस्पर विरोधी अपेक्षाओं को आसानी से नहीं स्वीकारती, हमारे देश में जहाँ महिला प्रधानमंत्री बन चुकी है, माउंट एवरेस्ट पर विजय पा चुकी है, वहाँ महिला तथा पुरुषों के बीच विरोधाभास और निंदनीय है, इस देश में हमेशा स्त्री को माँ, बहन, या फिर बेटी के रूप में देखा गया है।

नारी का योगदान का मूल्यांकन साहित्य में हो या किसी अन्य क्षेत्र में हो वह किसी क्षेत्र में आज पीछे नहीं है। आज सभी क्षेत्रों में नारी ने पुरुष से साझेदारी निभाई है। महिलाओं में बढ़ती चेतना और जागरूकता ने उनकी पारंपरिक छवि तोड़ी है, साहित्य में भी महिलाओं की भागीदारी बहुत तेज गति से हो रही है।

आर्थिक क्षेत्र में नारी :-

भारतीय समाज एक कृषि प्रधान समाज है, जिसमें कृषक हस्तशिल्प के माध्यम ले खेती करता है। इस क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है। कृषि हस्तशिल्प से संबंधित वस्तुओं के उत्पादन एवं विक्रय में महिलाओं ने परम्परागत रूप से सक्रिय योगदान दिया है। प्राचीन भारत में महिलाओं को आर्थिक जीवन में भाग लेने का जितना अवसर प्राप्त था, वह आगे के समय में भारत में निरन्तरकम होता चला गया। पर्दा प्रथा तथा स्त्रियों के क्रिया कलाप के संबंध में विकसित नवीन मान्यताओं एवं निषेधों के कारण स्त्रियाँ जीवन में अपेक्षाकृत कम भाग लेने लगी।

ब्रिटिशकालीन समाज में महिलाओं की आर्थिक स्थिति की निम्नता का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति के तहत कुटीर उद्योग और हस्तशिल्प का लोप था। भारतीय समाज में महिलाओं को आर्थिक तथा राजनीतिक क्रिया कलाप से अलग रखा गया है। महिलाओं की आर्थिक पराधीनता और आश्रित स्थिति समाज में पुरुष और स्त्रियों के मध्य कार्यों का विभाजन है और इसी कारण महिलाओं का शोषण होता है। स्त्रियों का जगह पारिवारिक कार्यों तक ही सीमित रहना चाहिए उन्हें आर्थिक तथा सामाजिक उत्पादन कार्यों से विरत रहना चाहिए।

भारत में सामाजिक आर्थिक विकास की वृद्धि प्रक्रिया के संदर्भ में ग्रामीण महिलाओं की स्थिति की विवेचना करते हुए ज्ञात होता है कि एक ओर तो सामाजिक, सांस्कृतिक मान्यताओं, मर्यादाओं तथा पुरुष प्रधान समाज एवं पितृ सत्तात्मक पारिवारिक संगठन ने परिणाम स्वरूप महिलाओं की प्रतिबंधित आर्थिक विकास, ग्रामीण पुनर्निर्माण कार्यक्रम और मिला आरक्षण कार्यक्रम ने पर्याप्त मात्र में योगदान दिया है। ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त होना अनिवार्य है।

राजनीतिक क्षेत्र में नारी :-

विश्व का इतिहास और विश्व के प्रगतिशील देशों की राजनीति, सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति इस बात का प्रमाण है कि किसी भी देश की वांछित प्रगति के लिए उस देश की महिलाओं की भागीदारी आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा द्वारा घोषित 'अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' और

'महिला दशक 1990-2000' की समाप्ति तक भी भारत की संपूर्ण कार्यात्मक शक्ति में महिला कार्यकर्त्ताओं के लिए किसी प्रकार का प्रतिबंध न होने के बावजूद भी वे भारत के आम चुनावों में बहुत कम संख्या में भाग लेती हैं तथा जो भाग लेती है, वे प्रायः राजनीति की ऊँची कुर्सी तक पहुँचने अथवा उसे प्राप्त करने में असमर्थ व्यवस्था में सत्ता के समीकरणों में प्रायः अपराध, अव्यवस्था एवं घोर स्वार्थ की राजनीतिक हैं। भारत में महिलाओं की राजनीतिक कार्यशीलता को जानने के लिए हम भारत के प्राचीन इतिहास का अध्ययन करें, तो हमें यह ज्ञान होता है कि भारत में महिलाओं की स्थिति बिगड़ती गई है। भारत के स्वधीनता आंदोलन में महात्मा गाँधी के विशेष प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से महिलायें देश के राजनीति क्षेत्र में आगे आई। सुधारवादी आंदोलन के फलस्वरूप भारत के राजनैतिक इतिहास में कई नारियों ने नवयुग के आरम्भ की सूचना दी, जिनमें एनी बेसेंट, सरोजनी नायडू तथा बेगम अम्मन बीबी मुख्य थी।

भारत में महिलाओं की राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए अनेक अधिनियम बनाये गए हैं। इनमें सती प्रथा के विरुद्ध अधिनियम, विशेष विवाह अधिनियम, बाल विवाह अधिनियम तथा दहेज विरोधी अधिनियम मुख्य हैं। अब तक की नौ पंचवर्षीय योजनाओं में लगभग सभी महिला शिक्षा एवं परिवार कल्याण योजनाओं को सम्मिलित कर सरकारी स्तर पर कार्यान्वयन का गंभीर तथा महत्वपूर्ण प्रयास किया गया है। आज महिलाएँ अनेक सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक मंचों पर अपना स्थान बना रही है। भारत में 1996 में हुए लोकसभा के चुनावों में 8619 पुरुष प्रत्याशियों में मात्र 3.36 प्रतिशत प्रत्याशी ही विजय घोषित हुई, जबकि चुनाव लड़ने वाली 325 महिला प्रत्याशियों में 11.38 प्रतिशत विजयी घोषित हुई।

भारत के संविधान के 73वें संविधान संशोधन से स्थानीय स्वशासन में महिलाओं को आरक्षण प्रदान कर राजनीति विकास के लिए रास्ता बना दिया गया। इस रास्ते पर चलने और आगे बढ़ना अब उनका दायित्व बन गया है। भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त विभिन्न अधिकारों तथा अधिनियमों के फलस्वरूप यद्यपि महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता उत्पन्न हुई है। परंतु इसकी मात्रा अत्यंत कम है अथवा उच्च सत्र पर इसकी मात्रा नहीं के बराबर है। लेकिन फिर भी नारी आगे आने की प्रयास करती है।

राजनीतिक में महिलाओं की भागीदारी के महत्त्व को समझते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने सिफारिश की थी कि विश्व की सांसदों की कुल संख्या न्युनतम 30 प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए सुरक्षित होना चाहिए। जिनका अनुसरण पंचायती राज व्यवस्था के द्वारा भारत में किया जा रहा है। अतः महिलाओं की राजनीतिक में वास्तविकता भागेदारी सुनिश्चित करने हेतु महिलाओं में जागरूकता लाना और उन्हें नेतृत्व के लिए शिक्षित करना आवश्यक है।

अंतत: यह कहा जा सकता है कि समकालीन समाज में नारी का स्थान पुरुष के बराबर है। सदियों से स्त्री जो अभाव, अवहेलना, शोषण, अत्याचार संवेदनहीन एवं अमानवीय अभिशापों को ढोती आ रही थी आज वह इन अभिशापों से मुक्त हुई है। समकालीन समाज में स्त्री का स्थान समाज के हर क्षेत्र में देखने को मिलता है। शिक्षा से लेकर राजनैतिक स्थानों में भी आज वह अपना आधिपत्य जमा रही है और पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने में प्रयत्नशील है।

संदर्भ :

1. सोसाइटी, मैकाइवर और पेज. पृ. 4
2. ए हैण्ड बुक ऑफ सोशियोलॉजी, आगबर्न और निमकाफ, पृ.172
3. साहित्य कुञ्ज, अप्रैल, 2012, पृ.42
4. साहित्य कुञ्ज, अप्रैल, 2012, पृ.42
5. साहित्य कुञ्ज, अप्रैल, 2012, पृ.42
6. यशोधरा, मैथिलीचरण गुप्त, पृ.15

तृतीय अध्याय

चाक में वर्णित स्त्री जीवन

3.क. चाक का परिचय

कथा-वस्तु

'चाक' मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाला उपन्यास है। 'चाक' की संपूर्ण कथा-वस्तु 17 खण्डों में बँटी हुई है। यह उपन्यास काल के उत्कर्ष को छूता हुआ उपन्यास है। इसमें अनेक पात्र हैं और सब का व्यक्तित्व अलग-अलग आकार में ढला है। लेकिन उपन्यासकार ने सभी पात्रों को उसके चरित्र के अनुरूप निखारा है। अंचल विशेष के लोकगीतों ने चरित्र को उभारने में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अपने उद्यम आवेग से सामाजिक रुढ़ियों को झकझोड़ती रेशम की हत्या से उपन्यास का आरम्भ होता है। लेकिन उस गर्भवती स्त्री की हत्या गाँव के सभी लोगों पर एक जैसा प्रभाव नहीं डालती। उसकी बुआ की बेटी सारंग इस उपन्यास की सबसे विद्रोही स्त्री पात्र है और इस उपन्यास की नायिका भी है, जिसको रेशम की हत्या सबसे अधिक झकझोरती है। वह उसके हत्यारे को हर हाल में सजा दिलाना चाहती है। इस तरह 'चाक' उपन्यास में सारे स्त्री पात्र पुरुष पात्र के तुलना में अधिक प्रगतिशील और रुढ़िविरोधी है। वह केवल व्यक्तिगत ही नहीं सामाजिक धरातल पर भी स्त्रियों के अधिकारों से वंचित रखने की तमाम रीतियों से लोहा लेती है। वह हजारों वर्षों से चली आ रही पुरुष सत्ता को चुनौती देती है तथा परिवार और समाज की देहरी लांघ जाती है। इतिहास का पृष्ठ खुलता है और रेशम की तरह हत्या की शिकार कई स्त्रियों की कहानी उजागर होती है। किस तरह रुकमणि की मौत रस्सी के फंदे से होती है, रामदेई की कुँए में कूदने से और नारायणी करबन नदी में डूब कर मर जाती है – ये सारी स्त्रियाँ 'सीता मइया' की तरह भूमि प्रवेश कर अपने को कुर्बान कर देती है।

इस उपन्यास के आरंभ से ही सारंग बेचैन रहती है क्योंकि सारे प्रकृति ही उसे रेशम के मृत्यु शोक में करुण रोदन करती हुई नजर आती है। वह बरबस सोए से जाग जाती है और अपने पति रंजीत को बड़ी आशा से ललकारती है कि रेशम का हत्या के खिलाफ उठ कर खड़ा हो और उस के हत्यारों को दंड

दिलाए। वह रंजीत से कहती है – "रंजीत शमशीर उठाओ तुम्हारी रेशम की मनोकामना राक्षसों ने खूंद डाली। सारंग की सुख-शांति डेरिया छीन ले गया। नीलबरन घोड़े की सवारी करो, चन्दन को काटने के लिए नहीं उसकी आत्मा को बचाने के लिए। उसकी प्रीति पर ऐसी सजा मत सुनाओं कि जन्म-जन्मान्तरों तक प्यासी रहे। सारंग तुम्हारी ताकत की मोहताज है।"[1]

उपन्यास के कथा का आरम्भ पश्चिमी उत्तर प्रदेश के एक गाँव में एक स्त्री की हत्या से होती है। सारंग रेशम के हत्यारें को सजा दिलाने के लिए अपनी समस्त नारी चेतना को समेत कर आगे बढ़ती है- "तुम पहले जमाने समझ रहे हो ? ठट्ठा है किसी की जान लेना ? कानून माफ करेगा हत्यारे को ? सारंग कितनी भोली है वह समझती है ज़माना बदल गया है। स्वाधीन भारत में ऐसी सरकार है, जो हत्यारे को सजा अवश्य ही देगी। देश की कानून की, पुलिस की यानी यथार्थ की उसकी समझ कितनी बचकानी है।"[2] सारंग को यथार्थ ज्ञान तब होता है जब रंजीत बताता है कि 'कानून-कायदे' पैसा देकर कागज के ऊपर पोछ देनेवाली इबारत के सिवा कुछ नहीं और औरत के हक़ में तो बिल्कुल नहीं। धीरे-धीरे सरकारी व्यवस्था के अनेक चरित्रों के दूसरे विद्रुप चेहरा भी उजागर होते हैं। गाँव के विकास के नाम पर आने वाली राशि, चाहे वह स्कूल बिल्डिंग के नाम पर हो या दूसरे विकास के नाम पर, प्रधान इन सारी योजनाओं पर गिद्ध दृष्टि जमाए रहता है और वह फर्जी कागजों पर ही योजनाएँ पूरी कर लेता है। इस उपन्यास में ग्राम पंचायत की भ्रष्टचारी चेहरा भी खुलकर सामने आता है। वह सारे सरकारी तंत्रों को अपने हाथ कर लिया है। स्वाधीन भारत में भले ही नैतिकता का विकास न हुआ हो लेकिन पूंजीवादियों ने आगमन कर अपने पाँव चारों तरफ पसारे हैं। प्रधान फतेसिंह, रेशम के हत्यारे डोरिया का बड़ा भाई मास्टर थानसिंह, साहूकार सेठ भवानीदास, बम्बई से पैसा कमा के लौटा नाइ हर प्रसाद, भाई की कलेक्टरी के अहंकार में हरिजन कुंवरपाल एक तरफ तो दूसरी तरफ बाबा गजाधर सिंह, नम्बदार, रंजीत, भवंर, झज्जू आदि के माध्यम से लेखिका ने गाँव के सत्ता संघर्ष को बखूबी से दर्शाया है।

सत्ता का लालच किस तरह आदमी के चरित्र को बदल देता है रंजीत इसका जीता जागता उदाहरण है। रंजीत से सारंग हमेशा आहत और निराशा पाती है। सारंग के मन में स्कूल मास्टर श्रीधर से बात करने पर एक नयी आशा की किरण जगती है – जैसे 'हवा का कोई ताजा झोंका' आया है। सारंग और

श्रीधर की दोस्ती और अंतरंगता गाँव के माहौल में अनेक प्रकार के किस्से को जन्म देते हैं। प्रधान फतेसिंह को चुनाव लड़ने और जीतने के लिए पैसे चाहिए। स्कूल की इमारत बनाने के झूठे कागजाद पर बहला फुसला कर श्रीधर से दस्तकत करने में जब वे असफल रहता है तो उस पर जानलेवा हमला किया जाता है। इस हमले में रंजीत की भी साठ-गाठ रहती है। यह घटना सारंग की चेतना को झनझना देती है। इसी भ्रष्ट और जटिल माहौल में सारंग इन गुंडों के ताकतों के खिलाफ चुनाव में परचा भरती है। सारंग की बगावत अतरपुर की उस छोटी सीमा में विद्रोह तेवर का मिसाल बन जाती है। सारे गाँव में खबर की धूम मचती है रंजीत की बहू पर्चा भर आई। और किसी को तो हवा भी नहीं लगने दी। और लोगो के लिए स्त्री का पर्चा भरना घोर कलयुग है। पति-पत्नी के बीच के घमासान में सारंग का व्यक्तित्व फिर चमकता है। सारंग के चरित्र की एक-एक परत खुलती है, उसके अंदर कितना विद्रोह भरा है और विद्रोह क्या-क्या रूप अखितयार कर सकता है यह प्रकट होता है। सारंग का प्रतिरोध व्यक्तित्व आक्रामक हो जाता है, उसका उदाहरण उपन्यास में देखा जा सकता है – "पागल विक्षित की भांति दौड़कर खूटी से बंदूक उतारी और बिजली की सी फुर्ती से चल दी दोनाली धायँ ! धायँ ! रणचड़ी बनी कड़ी है सारंग।"[3]

सारंग चंदना को दलबीर के साथ जाने से रोकना चाहती है लेकिन अपने पति द्वारा वह बहिष्कृत कर दी जाती है। सारंग बुरी तरह पिटी जाती है और उसे पैसों का लालच देकर भी खरीदने की कोशिश होती है। लेकिन वह अपनी बात पर अड़ी रहती है। उसका आत्मविश्वास उसे चाह कर भी पीछे नहीं हटने देता है। सारंग अपना चुनाव पर्चा बिना किसी ताम-झाम के भरती है और उसका प्रभाव भी गाँव में खूब देखने को मिलता है। दूसरी तरफ फतेसिंह प्रधान, थानेदार, थानसिंह, कुंवरपाल, रंजीत, सुलेमान सिंह, वगैरह, पोलीन बूथ कब्जा करने की योजना बनाते हैं। पूरा गिरोह शराब पार्टी में डूबा है और वहीं सब रंजीत का मजाक उड़ाते हैं कि पेटी-कोट गटरोट में काम कर रहे है रंजीत। रंजीत काफी देर तक तो सहता है लेकिन जब सहनशीलता जवाब दे जाती है तो वह कुंवरपाल की छाती में लात मारता है और खड़ा हो जाता है। शराब की पार्टी युद्ध स्थल में बदल जाता है। रंजीत बूरी तरह पिटा जाता है और प्रताड़ित होता है। वह जैसे-तैसे अपने घर के दखाने तक लड़खड़ाते हुए पहुँचता है तथा दरवाजे से अपना माथा टेक देता है। लेकिन वह इस आत्मपराजय की लज्जा किसी से कह नहीं पाता।

उपन्यास की मूल कथा के इर्द-गिर्द अनेक उपकथाएँ भी चलती रहती है जो उपन्यास की मूल कथा को संबलित करता है। सेठ भवानीदास की बड़ी बहू ने डोरिया को अखरे में हराने के लिए कलावती चाची द्वारा आत्मधिकार और कैलासी सिंह को मुक्त करने के लिए उसके साथ सोने का साहसी निर्णय, अपनी माँ के बदरी चारा के साथ प्रेम पर पश्चाताप करना, लौंग सिरी बुआ का सारंग और श्रीधर को संरक्षण देना, गुलकंदी और विसुनदेव के गंधर्व विवाह का समर्थन और उनके लिए विलाप उदंडता की वजह से हरप्रसाद की चप्पलों से पिटाई, सेठ भवानीदास की विधवा बेटी पंचन बीबी के महताब सिंह के प्रेम से लेकर उन्हें पशु की तरह गरम कलछुल से दागने की कथाएँ और बाबा भंवर तथा श्रीधर की उससे उम्मीदें आदि प्रसंगों से लेखिका ने मूल कथा को इस उपन्यास में बाँध दिया है।

प्रमुख पात्र :-

मैत्रेयी पुष्पा का इस उपन्यास के अधिकांश पात्र पार्श्वकृत श्रेणी के हैं। शेष पात्रों में से कुछ पार्श्वकृत पात्रों के जीवन संघर्ष में सहयोग देते हुए दिखाई देते हैं तो कुछ पार्श्वकृत पात्रों का शोषण करते हुए नित नई-नई समास्याओं को खड़ा करते हैं। उनके कथा साहित्य के सभी पात्र जीवंत है। जिसे पढ़ कर लगता है कि वो आस-पास का ही कोई पात्र है। इसलिए राजेन्द्र यादव ने इस उपन्यास के संबंध में कहा है - "मैत्रीय पुष्पा की कहानियाँ शहरी मध्यवर्ग के सीमित कथा संसार से उन लोगों को लेकर आयी है, जिन्हें आज समाजशास्त्री हाशिए के लोग कहते हैं। वे अपनी 'कहन' और 'कथन' में ही नहीं है, भाषा और मुहावरे में भी 'मिट्टी की गंध' समेटे हैं।"[4] इसका प्रमुख कारण यह है कि 'विजन' जैसे एकाध उपन्यास को छोड़कर उनकी बाकी सब रचनाएँ कई दृष्टियों से पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अन्यायों, अत्याचारों की शिकार बनने वाली ग्रामीण नारी जीवन की विविध पहलूओं को लेकर है। इस प्रकार जीवन के संघर्षों, लाजिमियों आदि का जीवंत चित्र अपनी रचनाओं में अनायास आने का कारण उनका अपना संघर्षमय प्रारम्भिक ग्रामीण जीवन तथा उसकी अमित स्मृतियाँ हैं। इसलिए ही उनकी रचनाओं में विषयों एवं पात्रों का चित्रित या ट्रीटमेंट बनावटीपन से युक्त नहीं है। दूसरे शब्दों में पार्श्वकृत की राजनीति से साहित्यिक जीवन की आरंभिक दशा में वे स्वंय अनभिज्ञ थी। उन्होंने अपने शब्दों में कहा है – "हाशिए के वर्ग' सच मानिए इस

शब्द से मैं साहित्य में आने के बावजूद बहुत दिनों तक परिचित नहीं हो पायी। केन्द्रीय वर्चस्व कहाँ है, मैंने यह भी नहीं देखा।"[5] इस उपन्यास के प्रमुख पात्रों का परिचय निम्नलिखित प्रस्तुत हैं -

सारंग :

सारंग 'चाक' उपन्यास की नायिका है। वह अतरपुर गाँव की निवासी है और रंजीत की पत्नी है। सारंग बचपन में गुरुकुल में पढ़ी थी और पूरे गाँव में उसके समान सुंदर और पढ़ी-लिखी औरत नहीं थी। सौतेली माँ से दूर रखने के लिए सारंग को बचपन में ही गुरुकुल पढ़ने भेज दिया गया था। जब सारंग सात बरस की थी तब से उसे अपने घर को छोड़कर गुरुकुल के अनुशासन में पढ़ने जाना पड़ा था। जो उसे बनवास लगता था। सारंग के शब्दों में -"मैं खतावार डालती थी। अम्मा को आवाज लगाती थी। दादी के पास सोना चाहती थी। सौराज की होड़ करती थी। अम्मा मुझे माखिं या दादा से लड़ती तो मैं ढीठ की तरह उन्हें घूरती थी। इसलिए मुझे वनबास दिया गया। गुरुकुल में रहती अधिकतर लडकियाँ किसी ऐसे ही जुर्म में सजा कटने आयी थी।"[6] माता-पिता के प्रेम से वंचित सारंग के स्वभाव में विद्रोह बचपन से ही था। गुरुकुल के कठोर अनुशासन में भी वह आवेग के क्षणों में शास्त्रीजी के बहुत पास गई थी। लेकिन दूसरे ही पल उनकी शारीरिक कामुकता के कारण उसका मन विद्रोह कर उठा था। अतरपुर गाँव में ब्याहकर आयी सारंग की बुआ की सुन्दर युवा विधवा बेटी रेशम की हत्या से ही 'चाक' उपन्यास की कथावस्तु खुल जाती है। विधवा होने के बावजूद भी रेशम गर्भिणी थी। ससुराल में उसकी हत्या होती है और हत्या करता है उसका छोटा जेठ डोरिया। सारंग डोरिया को सजा देने के लिए खूब प्रयास करती है लेकिन कानून में छिपे कमजोरियों का सहारा लेकर डोरिया छुट जाता है। सारंग रेशम के हत्यारे को सजा देने की जिद में गाँव के लोगों से दुश्मनी मोर लेती है। उसकी जिद को देखकर जब उसे डराने के लिए रास्ते में रोककर छेड़ा जाता है तो वह डोरिया को मुँह तोड़ जवाब देती है। उसका साहसिक व्यक्तित्व उपन्यास में देखा जा सकता है – "सारंग ने आव देखा न ताव, लात मारी उसकी जाँघों के बीच। रंजीत के चेढ़वाँ जुता पहनी थी। जुते की भरपूर चोट से तिलमिला गया डोरिया और दूसरे ही पल सारंग का ब्लाउज पकड़ लिया और गले से फाड़ता चला गया। चिर-चिर कर डाला। सारंग की नंगी छातियाँ---- उसने झपट पल्ला ढक लिया। शैतान भाग गया। दांती इस तरह भींची उसने, कि डोरिया की हड्डियाँ चबा रही हो।

तुझे इस बदसलूकी का मजा न चखा दिया तो मेरा नाम सारंग नहीं।"[7] सारंग बड़ी हिम्मत के साथ डोरिया के विरोध में खड़ी रहती है। वह जानती है कि डोरिया को सजा दिलवाने का कार्य आग से खेलने के बराबर है लेकिन हिम्मत हारना उसके स्वभाव में नहीं है। सारंग के इस स्वभाव पर रंजीत को गर्व है। इसलिए वह सोचता है कि मैं पीछे नहीं हटूँगा। सारंग जैसी तेज की धनी स्त्री सबको मिलती है क्या ? कम से कम अपनी बात को होटों तक लाने का साहस वो करती है। मन ही मन कद्र करते हैं पत्नी की। रंजीत को हिम्मत वाली तथा अपनी पढ़ी-लिखी पत्नी पर गर्व था। लेकिन जब पढ़ाई के कारण वह अन्या के विरोध में खड़ा रहने का साहस करती है, तब रंजीत को सारंग की हर बात काँटे के समान चुभने लगती है। सारंग के शिक्षित होने के कारण जब उस पर बच्चों के नाटक की जिम्मेदारी डाली जाती है तब रंजीत उसे घर बिठाने का प्रयास करने लगता है। सारंग से वह कहता है "सारंग, मेरे संगी-साथी तक दाह करते हैं। इतनी योग्य लड़की कहाँ से पाई यार ! जातों में ऐसी पढ़ी-लिखी लड़की। कन्या गुरुकुल में पढ़ी लड़की का मुकाबला कॉलेज की पढ़ी लड़की से क्या ? एक कोयला, दूसरी तितली। सारंग घर मान-मर्यादा रखना, पर्दा मुझे खुद नहीं अच्छा लगता। बस दलवीर भईया और दादा की आड़ कर ली। वैसे घूंघट में तुम बहुत अच्छी लगती हो।"[8]

सारंग के साहस का चरमोत्कर्ष रूप डोरिया के निर्दोष छूटने के पश्चात् दिखाई देता है। आरंभ में अपनी इज्जत बढ़ाने के लिए जो रंजीत डोरिया को सजा दिलवाना चाहता है , डोरिया के छूट जाते ही बौखलाकर सारंग का साथ छोड़ देता है। इकलौती संतान चन्दन की हत्या करने की धमकी सारंग को अपराधी की ओर से मिलने के कारण वह उसे शहर भेजने के लिए बाध्य हो जाती है। इसी समय रंजीत और सारंग के बीच का संबंध बिगड़ जाता है। सत्य और न्याय के सिद्धांत सारंग के लिए बहुमूल्य है। वह गुंडा और डोरिया को किसी भी तरह आघात पहुँचाना चाहती है। कैलास सिंह को बुलाकर सारंग डोरिया को कुश्ती के मैदान में हराकर अपनी हार का बदला लेती है। डोरिया और रंजीत के परिवार में सारंग द्वारा उठाए गये कदम में दुश्मनी बढ़ जाती है। लेकिन सारंग को अपनी जीत की ख़ुशी है।

हिम्मत और साहस सारंग में कूट-कूट कर भरा हुआ है। सारंग को कभी-कभी अपनी हिम्मत का आश्चर्य लगने लगता है। वह दूसरी औरतों की तरह गलत बातों को गलत मानकर चुप बैठने का स्वभाव

प्राप्त करना चाहती है लेकिन वह उससे नहीं हो पाता – "मैं दूसरी औरतों की तरह क्यों नहीं रहती ? मैं जो कर रही हूँ, गावं में और कोई क्यों नहीं कर रही ? जो बातें गलत हैं, उनको औरतें गलत भी मानती है पर मर्दों की दुनिया में दखल तो नहीं देती । मैं घुंघा सिराना भूलकर अखाड़े पर कान-आँखें टाँगे रही । लोकरीत भूल जाना ----रखता नहीं है क्यों ? अम्मा की बात याद आती है, भले वह सौतेली थी, कहती सही थी – सारंग तेरी आदतें तुझे ही दुःख देगी। बेटी की जात---इतनी साहस खूद हिम्मत।"[9]

रंजीत का व्यवहार सारंग को सीधे-सीधे विद्रोही बना देता है। चन्दन के विरह में दुखी सारंग के अकेलेपन को दूर करने के लिए श्रीधर का साथ उसे मिलती है। सारंग और रंजीत में चन्दन के जाने से मानसिक दूरी बढ़ने लगती है और श्रीधर सारंग के इस अकेलेपन को भरता है। सारंग श्रीधर की सहायता से चन्दन को वापस लाकर रंजीत के निर्णय के विरोध करती है। रंजीत के गलत व्यवहार के प्रति विद्रोह करते-करते विद्रोहिणी सारंग श्रीधर के इतने पास चली जाती है कि सभी गाँव में दोनों के नाम चर्चा होने लगती है। जब रंजीत सारंग और श्रीधर की निकटता से बौखला जाता है तब वह श्रीधर को बेरहमी से पिटाता है तो सारंग और अधिक विद्रोहिणी बन जाती है। सारंग की हर बात श्रीधर के पास आकर रूकती है। सारंग सभी बंधनों को तोड़कर श्रीधर के साथ शारीरिक संबंध बना लेती है। सारंग श्रीधर प्रजापति से शारीरिक संबंध स्थापित करने में गौरव महसूस करती है। सारंग अपने में खोई हुई सी रहती है। और सोचती है मेरे दिलों दिमाग पर क्यों छा गया है वह आदमी ? उसके आसपास होना ही मेरे लिए सर्वसुख है। श्रीधर का बोलना, चालना देखना ही इस गाँव की उदासी में खुशियों की लहरें भर देता है। उसे लगता है कि रंजीत के साथ उसकी जिंदगी सूनी थी, गायल थी, लाचार थी । श्रीधर आया तो लगा घुटन भरे आसमान को फोड़कर हवा का कोई ताजा झोका आया है, जो मेरे भीतर नई साँसे घावों पर शीतल मरहम और सुसान में मेले में ! कोई चाहे कुछ भी नाम दे इस रिश्ते को। ज्ञान-ध्यान कहे, या प्यार-प्रति। इस संबंध से सारंग पर दाम्पत्य अनिष्ठा का कनक पड़ जाता है। सारंग के विद्रोही स्वभाव के संदर्भ में डॉ. मधु संधु ने लिखा है – "सारंग का विद्रोह यौन नैतिकता के दोगले मानदंडों के विरुद्ध, ग्रामीण द्वेषों के विरुद्ध है। पति द्वारा मिलनेवाला अपमान और वात्सल्य की छिना-झपटी उसे और भी विद्रोही कर देते हैं।"[10]

सारंग प्रधान को उस वक्त सब से बड़ा आघात देना चाहती है जब वह चुनाव लड़ने के लिए तैयार हो जाती है। श्रीधर तथा ससुर की प्रेरणा से सारंग हाँ-ना करते-करते गाँव की राजनीति से ऐसे जुड़ती है कि लोकहित के लिए चुनाव में खड़ी रहती है और जीत भी जाती है। उसके स्वतंत्र व्यक्तित्त्व को उसकी यह जीत व्यक्त करती है। गाँव की सभी औरतों को सारंग के साथ चुनाव के समय होना तथा उसके विरोधियों का उससे डराना उसकी विजय है। रंजीत सारंग को चुनाव के समय लालच देता है और वह उसे चुनाव से नाम वापस लेने को कहता है। इस पर सारंग कहती है धरती की बेटियाँ लौह जंजीरों को काटने निकली हैं। अंत में बड़ी संख्या में महिलाएँ गुलकन्दी के फेरे पर खेद प्रकट करने के लिए एकत्र होते हैं। यहाँ सभी महिलाओं को अपनी ही हृदय वेदना से मुक्ति मिलती है। इसलिए यहाँ वे सभी भ्रष्टाचार और कुशासन के विरुद्ध खड़ी हो जाती है और सारंग का समर्थन करती है। सारंग के अंदर जो भय था जैसे - पति के कटु आक्षेपों का भय, घर से बाहर फेंक देने का भय, परिवार को कलंक के वृत्त में लाने का भय, गलती का भय, अपयश का भय आदि से मुक्त हो जाती है।

सारंग पूरे उपन्यास में कई स्तरों पर लड़ती है – सबसे पहले अपने आप से, अपने भीतर बैठी उस सारंग से जो परम्परागत है, घर के सदस्यों से तथा गाँव के लोगों से। रंजीत सारंग को परम्परागत सामंतीवादी विचारों के बल पर वस्तु बनाकर रखना चाहता था, लेकिन सारंग उससे संघर्ष करके अपने आपको व्यक्ति बनाकर रखती है। इसलिए उपन्यास में सारंग की संघर्षमयी चेतना ही या पाठकों से बहुविध, बहुस्तरीय संवाद करती है। इस दृष्टि से सारंग बदलते आधुनिक जीवन के परिदृश्य में अत्यंत शक्तिशाली पात्र है।

रेशम :

रेशम चाक उपन्यास की नायिका है। वह अतरपुर गाँव के साधजी और हुकुम कौर के पुत्र कर्मवीर की पत्नी है तथा सारंग की बुआ की बेटी है। कर्मवीर फौज में हवलदार था। कर्मवीर की मृत्यु विषैली दारु पीकर हो जाता है और रेशम पच्चीस साल की अवस्था में भरे जवानी में विधवा हो जाती है। रेशम का रूप सौंदर्य मर्दों को पागल बनानेवाला था। उपन्यास में उसके सौन्दर्य का चित्रण इस प्रकार किया गया है – "गुलाब की-सी रंगत, नाक-आँख से तराशी हुई सुंदर गुजरी, हथौड़ों की सी गढ़ी हुई देह की उठना। कहाँ

ले जाती इतना रूप ? कर्मवीर कहता था-तेरी याद में पागल रहता हूँ।"[11] अपने पति की मृत्यु के पाँच महीने बाद रेशम गर्भवती हो जाती है। वह पेट से है सुन के बूढ़ी सास की आँखें फटी रह गयी। बोली बंद हो गया। साँस रुक सकती होती तो उसी दिन रुक जाती। कुलच्छिनी बहू ने अपने पाप की कटार हुक्मकौर के सिने चला दी। रेशम को अपने द्वारा उठाया गया कदम विधवा होने के बाद भी परपुरुष से गर्भधारण करना गलत नहीं लगता था। रेशम जिस तरह अपने सास के साथ बाते करती है उससे उसकी विद्रोही प्रवृत्ति सामने आती है। पत्नी की मृत्यु के बाद पति दूसरी शादी कर सकता है और पति की मृत्यु के बाद पत्नी मात्र जीवन भर उसके दुःख में डूबी रहे, यह रेशम को स्वीकार नहीं है।

देह की जो आवश्कता है, रेशम मनुष्य होने के कारण, उसे पूरा करना जरुरी समझती है। रेशम अपनी सास से कहती है – "भइयों ! तुम मेरे पीछे क्यों पड़ गयी हो ! मेरे चाल-चलन की झड़ी फहराना जरुरी है ? बिरथा ही छानबीन करने में लगी है। आज को तुम्हारा बेटा मेरी जगह होता तो पूछती कि तू किसके संग सोया था ? अब मेरी जगह होता तो पूछती कि तू किसके संग सोया था ? अब उसकी बाँह गह ले। मेरे पीछे तेरहवीं तक का भी खबर न करता और ले आता दूसरी।"[12] रेशम मातृत्व और प्रेम के लिए तरसने वाली स्त्री है। रेशम की कोख में जो बच्चा है उसके पिता कौन है, उसकी सास उससे बार-बार पूछती है पर रेशम इस रहस्य को खोलना नहीं चाहती। सास रेशम को डोरिया की बाँह को थाम लेने को कहती है, किन्तु रेशम को यह स्वीकार नहीं है। उसके विचार में बिना बाप का संतान पाप नहीं है बल्कि पुण्य है। उसे लगता है वह पुण्य कर रही है। उसका मानना है बिना बाप के बालक को भगवान पाप मानता तो कूँवारी विधवा की कोख सुखा डालता। जब तक रेशम की सास तोफा तेलिन से सतबरसी अजवाइन, पपीता के बीज, तिबरसा गुड घोंट-पिस्कार हमल गिराने की शर्तिया दवा बनाकर गर्भपात करना चाहती है तब रेशम इस प्रकार प्रतिक्रिया करती है – "रंडी सास अपने पूत को तो रोती है और मेरे बालक की हत्या पर उतारू है।"[13]

रेशम प्रेम और मातृत्व के लिए तरसने वाली होने के कारण अपने पेट के गर्भ का गर्भपात नहीं कराना चाहती। ससुराल छोड़कर वह मायके भी नहीं जाना चाहती क्योंकि उसके स्वर्गवासी पति की संपत्ति और जमीन-जायदाद पर उसका अपना अधिकार है। रेशम का जो विद्रोह था वो अधिक समय तक

नहीं चलता है। एक स्त्री को पतिव्रत धर्म एवं विधवा धर्म तोड़ने का जो सजा पुरुष प्रधान सामाजिक संरचना की ओर से, परम्परा से मिलता आया है, रेशम को उसी सजा का सामना करना पड़ता है। एक पुराने बिटौरे के नीचे रेशम दबकर मर जाती है। डोरियो ने फावड़े से बिटौरा ढाह दिया था। रेशम का समस्त विद्रोह इस प्रकार एक मूक चीख बनकर रह जाती है। रेशम की हत्या नारी की स्वतंत्रता, अधिकारों और उसकी अस्मिता की हत्या है। रेशम के भीतर महिला की आधुनिक सोच उभरती है। वह उन मर्यादाओं, नियमों रीति-रिवाजों का विरोध करती है जो स्त्रियों की उपेक्षा करते हैं।

श्रीधर :

'चाक' उपन्यास का पात्र श्रीधर अतरपुर गाँव के स्कूल में नेकसेराम मास्टर के बदले आए हुए नए मास्टर हैं। जाति से श्रीधर प्रजापति कुम्हार है। वह रंजीत और सारंग का बेटा चन्दन के मास्टर हैं। श्रीधर प्रजापति का चरण इसलिए सारंग छूती है। श्रीधर प्रजापति का आलोचना रंजीत करता है क्योंकि वो जाति से कुम्हार है, जो पिछड़ी जाति है। इस पर रंजीत सारंग से पूछ लेता है। साला कल का लौंडा, तुम्हारा पूज्य हो गया ? औरतों को बहकाने वाली बात। तुम्हारी कमजोर नस टटोल ली उसने। उसके जरिए तुम को भरमा गया। श्रीधर और सारंग दोनों अन्याय और अत्याचार के विरोधी है। सारंग अपनी बुआ की बेटी का हत्यारा डोरिया से प्रतिशोध लेने के लिए तुली है। इसी बीच सारंग और श्रीधर धीरे-धीरे एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हो जाते हैं। रंजीत दोनों के संबंध को शक की दृष्टि से देखता है। इधर सारंग अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए श्रीधर का सहारा लेती है।

श्रीधर और सारंग की मित्रता को लेकर सारे गाँव में चर्चा होती है। अपनी बहन के हत्यारे को सजा देने के लिए छटपटाती सारंग जब अपने पति का भी सहयोग नहीं पाती तब वह श्रीधर की ओर झुकने लगती है। रंजीत सारंग और श्रीधर की निकटता को देखकर बौखला जाता है और वह श्रीधर को बेरहमी से पीटता है। इसके बावजूद भी सारंग श्रीधर के ठीक होने तक सेवा करती है। सारंग भी नैतिक बंधनों को तोड़कर श्रीधर से शारीरिक संबंध बना लेती है। श्रीधर और सारंग के प्रेम संबंध में लेखिका कहती है – "मेरी दृष्टि में 'प्रेम' शब्द और व्यभिचार शब्द अलग-अलग देखा जाए तो दोनों में एक दूसरे के विपरीत आचरण में दिखते हैं। प्रेम जहाँ निश्छलता विश्वास और ईमानदारी भरा लगाव हैं तो कपट चोरी और

बेईमानी है। लेकिन सामाजिक विड़म्बना यह है कि अक्सर ही प्रेम को व्यभिचार से जोड़ दिया जाता है। ख़ास तौर पर विपरीत लिंगी प्रेम को। 'चाक' उपन्यास छपने के बाद बड़ा बवाल मचा था, क्योंकि मैंने नायिका की ओर से लिख दिया था – यह व्यभिचारी नहीं, मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है – प्रेम जो प्रेमी का स्पर्श करना चाहता है, उसके दुःख दर्द को छूना चाहता है, उसको तकलीफों और प्राण लेवा हमलों से बचाना चाहता है।"[14]

श्रीधर एक प्रेमी है और उसका प्रेम संबंध विवाहित सारंग के साथ है। लेखिका ने श्रीधर और सारंग के प्रेम को नैतिकता के किसी कटघरे में न खड़ा करके मुक्त कर दिया है। यहाँ श्रीधर के संबंध में शशिकला राय की टिप्पणी का उल्लेख करना अधिक संगत लगता है – "श्रीधर विचार है श्रीकृष्ण का जो युगों से मुक्ति की राह पर उजाला फैलाया आया है। जिसके संघर्ष मात्र से स्त्री अपनी अस्मिता की रक्षा का हौसला बुलंद कर लेती है। श्रीधर सारंग की बेचैनी को जानता है। वह अपने प्रेम के बूते देना चाहता है सारंग को विक्षोभ की ऐसी चिंगारी जो लापत बनकर उठे और छीन ले अपना हक़ वीर्यवर्धक शिलाजीत खानेवाले मर्दों से। यहाँ प्रेम शक्ति है, न्याय है, मनुष्य मात्र की मुक्ति है।"[15]

'चाक' उपन्यास में बिगड़ते दाम्पत्य संबंधों से चिंतित सारंग को दर्शया गया है। सारंग और रंजीत दाम्पत्य जीवन इस उपन्यास में तनावपूर्ण रहता है। तनाव का कारण है श्रीधर और सारंग के प्रेम संबंध। पारिवारिक समस्याओं को लेकर सारंग श्रीधर से बात करती रहती है। लेकिन रंजीत इसे गलत समझता है। रंजीत गुमसुम से रहने लगता है। सारंग देख देखकर परेशान होती है। बार-बार रंजीत से कहती है मैंने कोई गलत काम तो नहीं किया। बाबा से पूछ लो चन्दन को दाखिल तो करना ही था। इस संबंध में रंजीत सारंग से कहता है कि उस साले के कारण तू लड़के को भी मरवा डालेगी। मास्टर श्रीधर प्रतिभावान शिक्षक, सुधारक, सामाजशास्त्री और अन्याय के विरोधी सक्रीय कार्य करता एवं ग्रामीण जीवन के संबंध में गहराई से विचार करने वाला है। वह नारी जीवन की अत्यधिक हीन स्थिति और शहरों में महिलाओं के नाम पर पनपनेवाले संगठनों, संस्थाओं आदि की अर्थहीनता के बारे में सोचता है। उपन्यासकार ने श्रीधर के चरित्र को इस प्रकार प्रस्तुत किया है – "श्रीधर को यह देखकर सदा आश्चार्य होता रहा है कि जानवरों के बाद अगर किसी को खुंटे से बाँधा जाता है तो वे है आँगन लीपती, घर सहेजती, खेतों में काम करती

औरतें। श्रीधर को शहरों में पनप रही विभिन्न संस्थाओं के नाम याद आते हैं – नारी उत्थान केंद्र, सहेली, जागो री, नारी सहायता केंद्र---पता नहीं वे किन नारियों के लिए है ? प्रौढ़ शिक्षा, नारी शिक्षा पर व्याखान देने से क्या फायदा ?"[16] दूसरी ओर यही श्रीधर सामाजिक जीवन में सदियों से व्याप्त पुरुष केंद्रित व्यवस्था के अन्यायों, अत्याचारों, कुसंस्कारों, कुरीतियों आदि से ऊबकर यों सोचता है कि वह जिन बालकों को पढ़ाते हैं, उनकी माताओं के देख! ये मनुष्य जाति से अलग मनुष्य है। अच्छा है अज्ञान में रहकर सहना सीखें। उनको ज्ञान के दर्शन कराना साजिश ही तो होगी उन्ही के खिलाफ। सारंग का क्या हाल होगा, श्रीधर पछताते हैं उसको उकसाकर। अपनी पढ़ाई लिखाई भूलकर खूंटे की गया की तरह शांत मन जी रही थी। औरत से पहले आदमी को ज्ञान देना होगा। उसके संस्कारों को प्रकाश की दुनिया में जाने का जोखिम उठाया होगा। तब शायद ये गुमसुम युवतियाँ निर्भय होकर हँस सकें। मास्टर श्रीधर के अनुसार शिक्षा का अर्थ मर्दों के कुसंस्कारों और अंह की अशिक्षा को मिटाना और निजी स्वार्थों से मुक्त करना है।

श्रीधर की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से सारंग चुनाव में खड़ी होती है। जब सारंग चुनाव लड़ने के लिए पर्चा भरकर लौटती है तो रंजीत ताना मारता है। जवाब में वह मौन रहती है। चंदन की आड़ में ये शब्द केवल उसके लिए हैं। वह पर्चा भरकर आई है, इसलिए यह मातम का माहौल पैदा किया गया है। जिस तरह कुँवरपाल इगलास से ही बताशे बाँटता आया हैं, रंजीत खड़े हुए होते तो बाँटते, मेल मिलाप का सिलसिला चल रहा होता। एकता के नारे आरम्भ हो गए होते। पर रंजीत को लगता है कि उससे उसका बेटा भी जुदा किया जा रहा है। मैं ऐसी गैर हूँ तुम्हारे लिए ? चन्दन के लिए तुम अपने सात सुख छोड़ सकते हो, मुझे मेरा हक़ देने में चुक रहे हो। इस से पहले सारंग जब पति का विरोध करती है तब श्रीधर सोचता है – "सारंग पुरानी रीतियों, कुरीतियों, रूढ़ियों से लड़ती तो शयद इतना टकराव न होता, उसका रास्ता दूसरा है, जो बेहद टेढ़ा और शूलों से भरा है। क्योंकि वह पति से लड़ना चाहती है। कई बार मन में आता है, समझाया जाए उसे देखो, परम्पराओं में रहकर रीतियों को मानकर तुम सुखी और सुरक्षित रहोगी। तुम ऐसी सत्ता से लड़ना चाहती हो जिससे अब तक तो कोई जीता नहीं। रंजीत का विरोध करके खुद ही चूर-चूर हो जाओगी।"[17]

श्रीधर अतरपुर गाँव की प्राइमरी पाठशाला का अध्यापक है। वह स्कूल भी गन्दी राजनीति का शिकार बन चुका है। श्रीधर ग्राम प्रधान से कहता है प्रणाम ऐसे अफसर को प्रणाम ! जिस ने इन मासूमों को छोटी-छोटी चीजों में से कमीशन खाया हो और पूरी-पूरी रकम हजम कर रहा हो। यह इनकी बढ़ती, विकसित होती उम्र के साथ उसी तरह की बईमानी है, जैसे कोई कच्चे पौधों की धूप छीन ले जाए, कपोलों की हवा चुरा ले। गीली मिट्टी के बर्तनों को धूप दिखने के नाम पर आग में धर दें। प्रधान इन्ही सत्यपुरुषों की कृपा से स्कूल में आध्यापक नहीं, दलाल तैनात किये जाते हैं। गाँव के मुखिया न्यायिकारी प्रधान नहीं, गुंडों की भूमिका निभाते हैं। पाँच हजार का सामान आना था स्कूल में कहाँ आया ? रूपए कहाँ गए ? ऊपर से इन मासूमों को सजा देता है। ग्रामों का विकास क्षुद्र राजनीति के चलते रुक गया है। स्कूल की बिल्डिंग के नाम पर ग्राम प्रधान अनुदान लेकर डराकर जाना चाहता है। वह श्रीधर को भी लालच देता हैं – "हम समझ रहे हैं, तुम क्यों रूठे हो ? हमारे बालक की उम्र के तुम मास्टरजी समझते हो कि तुम्हारे दिल की बात न समझेंगे ? हिस्सा तुम्हारा भी होगा। मुफ्त में नहीं लेना चाहते तुम्हारे दस्कत। जब सके दस्कत की कीमत है, तो तुम्हारे दस्कतों की क्यों न होगी ? कोठरा भी खड़े नहीं करने। इसी स्कूल की रँगाई-पुताई करवानी है बस। इंजिनियर बिल्डिंग पास कर देगा। अहलकार दस्कत करके मंजूरी दे देंगे। बोलो, तुम कितना मांगते हो ? दस हजार ? बारह ? चलो पंद्रह हजार तक।"[18] श्रीधर के दस्तखत न करने पर रंजीत और हेराफेरी से जुड़े हुए अन्य लोग उस पर आक्रमण करते हैं। संक्षेप में श्रीधर एक आदर्शवान स्कूल का मास्टर, समाज सेवक और प्रेमी है।

समस्याएँ

समकालीन हिंदी उपन्यास साहित्य की सुप्रसिद्ध लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी भावाभिव्यक्ति तथा नारी की समस्याओं के चिंतन के लिए उपन्यास जैसे सशक्त विधा का चयन किया है। मैत्रेयी पुष्पा ने 'इदन्नम' 'चाक' तथा 'अल्मा कबूतरी' जैसे सामाजिक उपन्यासों की रचना करके हिंदी उपन्यास जगत में अपनी स्वतंत्र पहचान बना ली है। मैत्रयी पुष्पा का 'चाक' एक सशक्त नारी प्रधान उपन्यास है जिसमें शोषण और अन्याय के खिलाफ संघर्षरत नारियाँ अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक दिखाई देती है। वैसे मैत्रेयी पुष्पा का संपूर्ण कथा साहित्य नारी को केंद्र में रखकर लिखा गया है। इसलिए उसमें प्रमुख रूप से

नारी से संबंधित अनेक समस्याएँ उभरकर सामने आती हैं। मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'चाक' की मुख्य समस्याएँ निम्नलिखित हैं –

1. दहेज की समस्या

2. विधवा स्त्रियों के स्वावलंबल और अस्मिता की समस्या

3. विवाहेत्तर स्त्री-पुरुष संबंधों से निर्मित समस्या

1. दहेज की समस्या :-

'चाक' उपन्यास में मैत्रयी पुष्पा ने दहेज की समस्या का चित्रण एक ऐसी घटना से किया है जिसको पढ़कर पाठक सोचने के लिए विवश हो जाता है। उपन्यास में गरीब विधवा हरिप्यारी नाइन अपनी बेटी गुलकंदी का विवाह दहेज देने में असमर्थ होने के कारण नहीं कर पाती। गुलकंदी की सगाई रामलाल का बेटा रतनलाल से होती है परंतु बेटे का बाप दो साल से ब्याह को टाले जा रहा है और गाँव में गुलकंदी की बदनामी विसुनदेवा नाम के लड़के के साथ जोड़कर कर दी जाती है। माँ इस बात से बहुत चिंतित है कि कहीं बेटी की सगाई ना टूट जाए। इसलिए हरिप्यारी नाइन सारे लाज-लिहाज घूँघट-परवा उतारकर समधी से बात करने उसके गाँव चली जाती है। परंतु समधी स्वयं बात न करते हुए दूसरे आदमी के जरिए कहलवाता है कि "बीस हजार नगद नोट भिजवा दे और मन चाहे जाहँ भांवर डाला ले रतनलाल की।"[19] गरीब विधवा इतनी पैसा कहा से लाएगी ? दहेज देने में नाकाम माँ बेटी पर गुस्सा उतारते हुए बेहरमी से कपड़ा कूटने वाली मोंगरी से इतना मारती है कि मानो जान ही ले लेगी। दहेज समस्या हमारे समाज की कोढ़ है। जो समाज को सदियों से जकड़ा हुआ है। लाख कोशिशों के बाद भी समाज इससे मुक्त नहीं हो पा रहा, इसका कारण कही न कही हमारे मानसिकता का है। हम भले आज आधुनिक हो गए हैं मगर सोच आज भी पुरानीं रुढियों से ग्रसित है। उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने समाज में इन्हीं से ग्रसित लोगो का यथार्थ चित्रण किया है।

2. विधवा स्त्रियों के स्वावलंबन और अस्मिता की समस्या :-

भारतीय समाज में विधवा स्त्रियों का जीवन दुखों से भरा करुणा तथा यातनामय है। सामाजिक मान्यता के अनुसार विवाह होने पर अगर पत्नी की मृत्यु हो जाती है तो पति दूसरा विवाह कर सकता है तथा समाज उसे मान्यता देता है। लेकिन पति की मृत्यु होने पर पत्नी को दूसरी शादी करने के लिए समाज मान्यता नहीं देता। ऐसी स्त्री को विधवा का जीवन व्यतित करना पड़ता है। पति की मृत्यु स्त्री को नितांत असहाय और निराश्रित बना देता है। सामाजिक कुरितियाँ और रूढ़ियाँ उसके जीवन को दूभर कर देती है। वह अपना सारा जीवन को असहनीय पीड़ा एवं वेदना के साथ बिताने को मजबूर हो जाती है। समाज में अकेले नारी का जीवन बहुत कष्टमय होता है। समाज ऐसी स्त्री को किसी प्रकार के अधिकार नहीं देता । स्त्री के इस अभिशाप जीवन का करुण एवं मार्मिक चित्रण मैत्रयी पुष्पा ने अपने उपन्यास 'चाक' में किया है।

'चाक' उपन्यास में लेखिका ने रेशम के माध्यम से विधवा जीवन की त्रासदी को यथार्थ ढंग से प्रस्तुत किया है। समाज में बिना विवाह किये किसी भी स्त्री को दूसरे पुरुष के साथ शारीरिक संबंध रखने की अनुमति नहीं दी जाती। पुरुष चाहे तो दस-दस स्त्रियों के साथ संबंध रख सकता है। अगर कोई स्त्री साहस करे तो उसका जीना मुश्किल कर दिया जाता है। उपन्यास के करमवीर की विधवा पत्नी रेशम का चरित्र भी ऐसा ही है। वह विधवा होने के बाद दूसरे पुरुषों से संबंध रखती है, इस बात को घर के सदस्य बर्दाश नहीं कर पाते। विधवा रेशम को उसकी सास ने उसके जेठ डोरिया के साथ घर बसाने को सुझाव दिया परंतु रेशम उज्जड़ गँवार डोरिया के साथ शादी करने से मना कर देती है। रेशम अपनी भावनाओं को ख़त्म करना नहीं चाहती और स्त्री पुरुष का भेद नहीं मानती। वह कहती है "आज तुम्हारे बेवा मेरी जगह होता तो पूछती कि तू किसके संग सोया था ? अब उसकी बाँह गह ले। मेरे पीछे तेरही तक का भी सब्र न करता और ले आता दूसरी। तुम खुश हो रही होती कि पूत की उजड़ी जिंदगी बस गई। पर मेरा फजीता करने पर तुली हो।"[20] रेशम का मर्दों जैसा साहस देखकर डोरिया तिलमिला जाता है और उसकी शेरनी जैसी चुनौती को सदा के लिए मिट्टी के मलबे के नीचे दफना देता है। उसके साथ ही उसके पेट में पलने वाला बच्चा भी समाप्त हो जाता हैं। पुरुष प्रधान संस्कृति में स्त्री को इसी तरह नष्ट कर दिया जाता है। सब

जानते हुए भी गाँव के स्त्री पुरुष रेशम की मौत के बारे में चुप्पी साधे बैठ जाते हैं। लेखिका ने स्त्री जीवन की मर्मातक पीड़ा का करुणाजनक चित्रण किया है।

3. विवाहेत्तर स्त्री पुरुष संबंधों में निर्मित समस्या :-

भारतीय समाज में पारंपारिक विवाह को एक पवित्र बंधन तथा संस्कार माना जाता है। स्त्री पुरुष के विवाह संबंध को भारतीय संस्कृति अनेक जन्मों का संबंध मानती है। बीसवीं शताब्दी की विवाह की सांस्कृतिक गरिमापूर्ण अतिबौद्धिक, वैज्ञानिक तथा यांत्रिक समाज में उत्पन्न व्यक्तिवादी जीवन दर्शन ने भयानक आघात पहुँचाया है। भारतीय समाज में भी इसका दुष्परिणाम अनेक कारणों से विवाह संबंध पर प्रश्न चिन्ह लग रहा है। आज स्त्री पुरुष के विवाह संबंध चिरकालिक एवं विवाह से परे नहीं रहे।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में विवाहेत्तर नारी की असहनीय दयनीय स्थिति देखने को मिलता है। इसके अलावा पुरुष के विवाहेत्तर आकर्षण से स्त्री तथा परिवार के दूसरे सदस्यों के मन में उत्पन्न सन्देश तथा उसके परिणामस्वरूप कलहपूर्ण गृहस्थ जीवन के उदहारण भी दिखाई देते हैं। विवाहेत्तर स्त्री पुरुष के संबंध निर्माण होने के कई कारण हो सकते हैं। जैसे – अनमेल विवाह, पति के मरणोपरांत पत्नी की आत्मरक्षा तथा कामतृप्ति की भावना, दहेज देने में असमर्थ पत्नी के प्रति पति का उपेक्षा भाव तथा स्त्री-पुरुषों की चरित्रहीनता आदि। 'चाक' उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने इन समस्याओं को दिखाने का प्रयास किया हैं।

'चाक' उपन्यास की रेशम विवाहित होने के बाद भी दूसरे पुरुष के साथ अनैतिक संबंध बनाती है। रेशम का पति फौज में होने के करण साल में एक बार छुट्टी लेकर गाँव आता था और छुट्टी खत्म होते ही वे वापस चला जाता था। रेशम का जीवन पति के बिना अकेला हो जाता है और वह बिना संकोच और डर के दूसरे पुरुषों के साथ अपनी देहवासन की तृप्ति करती है और रूप सौंदर्य की खान रेशम विधवा हो जाती है। पति की मृत्यु के बाद वह घर में कैद रहकर अपने भाग्य पर आँसू बहाने के बदले अपने जीवन का रास्ता खुद तय करती है। वह अपनी जिंदगी में किसी को भी दखल देने का अधिकार नहीं देती। और ना ही विधवा का छुई-मुई सा जीवन बिताना चाहती है। विधवा हो या सधवा, देह की भूख सब को समान रूप से

होती है। विधवा होने पर यह भूख मर तो नहीं जाती। उसकी कामवासना उसे निडर और साहसी बना देती है। वह अपने समाज की पुरखों की मान-मर्यादा, लोक-लाज, तथा कानून तक की परवाह न कर दूसरे पुरुष के साथ संबंध बनाती है और गर्भवती हो जाती है। रेशम जब दूसरे पुरुषों के साथ संबंध रखती है तब उसकी सास हुकुमौर उससे लड़ते हुए कहती है – "रंडी मेरे पूत की चिता तो सीरो हो जाने देती।" तब रेशम अपने सास को मुंहतोड़ जवाब देती है – "अम्मा तुम तो बिरथा ही दांत किटकिटा रही हो। तुम्हारे पूत की चिता ठंडी हो जाने से क्या मेरी देह की आग बुझ जाती ? जीतों-मरतों का भेद भूल गई तुम ? बेटा के संग मैं भी मरी मान ली ?"[21] वह अपनी भावनाओं को रौंदकर पतिव्रता नहीं बनना चाहती। स्त्री-पुरुष का भेद भी नहीं मानती। लेखिका ने रेशम के माध्यम से स्त्री जीवन का यथार्थ वर्णन किया है। स्त्री की मृत्यु के बाद पति दूसरा विवाह कर सकता है समाज को इस पर कोई एतराज नहीं होता। पुरुष चाहें दस-दस स्त्रियों के साथ संबंध रखे कोई अपराध नहीं माना जाता। इस समाज में स्त्री के लिए ही मर्यादा का पालन करने की जबरदस्ती होती है।

रेशम का बात सुनकर उसकी सास दांत घिसती हुई बोलती है – "मेरा बेटा टाँगकर न आ गया होता। मर्द जात दस गली नांखे तब भी नहीं जान सकता कोई। तू लुगाई की जात होकर भी मर्दों जैसा हौसला जुटा रही है ? रेशमिया,बैयर घी का मटका होता है, आदमी की आँच पाए भसम उसी को होना पड़ा।"[22] पुरुष प्रधान समाज के बनाये नीति-नियमों को तोड़ने के अपराध में रेशम को मौत की सजा मिली। रेशम का जीत डोरिया उसकी आवाज और चुनौती को सदा के लिए मिट्टी के मलबे के नीचे दफना देता है। उसके साथ ही उसके पेट में पलनेवाले नाजायज बच्चा का समस्या भी समाप्त हो जाती है । 'चाक' उपन्यास की नायिका सारंग एक पढ़ी-लिखी स्त्री है। वह रंजीत की पत्नी और दस साल के बच्चे की माँ है। विद्रोह की आग उसके व्यक्तित्व में भरी हुई है। वह स्त्रियों के प्रति होने वाले अत्यचार को चुपचाप सहन नहीं कर सकती। वैवाहिक जीवन के शुरू में वह अपने पति से संतुष्ट भी है। पर रेशम की हत्या के बाद रंजीत से उसका मोहभंग हो जाता है। रंजीत न केवल कायर है साथ ही सुविधाभोगी है, वरन नौकरी प्राप्त करने में होनेवाली असफलता से कुंठित भी है। चन्दन को वह गाँव के स्कूल में पढ़ाना नहीं चाहता, जब कि सारंग इसके लिए कृतरुकल्प है। इस कारण से सारंग रंजीत से दूर होती जाती है और श्रीधर से जुड़ती जाती है। सारंग का यह जुड़ाव श्रीधर के साथ शारीरिक संबंध तक भी पहुँचता है और उसके दाम्पत्य

जीवन में हलचल और तूफान पैदा हो जाता है। रंजीत पत्नी को दूसरे मर्द का होता देखकर आग बबूला हो जाता है और सारंग को लौंगासिरी बीबी के घर में ही दंड देने के लिए उतावाला हो गया। रंजीत हाथ में बंदूक लिए सारंग और श्रीधर के खून के प्यासा बन ललकारता हुआ कहता है - "साली आ इधर ! बाहर निकल बातकर ! आ ! बन्दुक का बट उछालते हुए झपटे।"[23] लौंगासिरी बीबी ने सारंग को घर जाने को कहा परंतु सारंग जानती है कि वह बचकर कहाँ तक जा सकती है। इसलिए रंजीत के सामने खड़ी रह गयी। सारंग पर रंजीत ने उछलकर झपट्टा मारा और चोटियाँ पकड़कर खींच लाया दरवाजे से बाहर। जैसे जानवर शिकार को झिंझोड़ता है वैसे ही रंजीत सारंग को झिंझोड़ रहा है। अच्छा ख़ासा तमाशा बन गया। वहाँ भीड़ जमा होने लगी। रंजीत की आँखों में खून उत्तर आया। क्रोध के आवेश में वे सत्य सबके सामने बक दिया। वह कहने लगा – "साले मास्टर का बच्चा ! तेरी मौत मेरे ही हाथों लिखा है। उनका हाथ में बंदूक और होठों पर जहरीली गालियाँ। मेरे हाथों इतनी मार खाई, फिर भी तेरी यह हिम्मत ! पराई लुगाई को---साले ठौर मार दूंगा अभी, चाहे फाँसी चढ़ जाऊं ! फाँसी का दर नहीं है।"[24] घर की ओर लूटी-लूटी सी बेपर्दा होकर सारंग जा रही है। उसकी बेपर्दा का आलम गाँव की औरतें घर से बाहर निकल कर देख रही हैं। सारंग को अपने किए पर थोड़ा भी पछतावा नहीं होता। क्योंकि उसने जो किया है सोच समझकर किया है। वह अबोध थी, न विधवा राँड और न कुंआरी अल्हड़ जवानी की मारी। श्रीधर को वह गाँव के दुश्मनों से अनीति से लड़ सके। उसके पास देह के अलवा देने को क्या था ? वह कहती है – "मैं लाज मानी न व्यभिचार ! श्रीधर को आनंद सरोवर में खींच लिया। अपना अंग-अंग मरी गागर की तरह उलीच डाला।"[25] सारंग ने पति के द्वारा किये अत्याचार से श्रीधर को उबारने के लिए तथा हौसला बंधवाने के लिए मुआवजा के रूप में अपना शरीर सौंप दिया।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि मैत्रयी पुष्पा ने खुली आँखों से सामाजिक यथार्थ को देखा है और नारी की वास्तविक दुःख भरी अवस्था का चित्रण 'चाक' में किया है। लेखिका की अनुभूतिपरक संवेदना अत्यंत व्यापक, गहरी, मार्मिक एवं विश्वसनीय है।

उद्देश्य :-

'चाक' मैत्रेयी पुष्पा का बहु-चर्चित और बहु-पठनीय उपन्यास है। उपन्यास की कथा स्त्री-जीवन की व्यथा पर आधारित है। मगर उपन्यासकार ने क्रांतिकारी स्त्री पात्रों की रचना कर स्त्रियों को अपने अधिकार के लिए विद्रोह का संदेश देती है। इस उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने क्रांतिकारी कथानक रचा है। परंतु यह प्रचलन में चल रहे क्रान्तिकारी राहों का भीड़ का हिस्सा नहीं है। प्रख्यात आलोचक विजय बहादुर सिंह इस बात को संदर्भित करते हुए कहते हैं – 'असल बात तो यह है कि मैत्रेयी उपन्यास में एक क्रांतिकारी एक्टिविस्ट के रूप में क्यों काम कर रही है, क्यों नहीं वे बंधी-बधाई क्रांतिकारी ? राहों पर चलती हुई उस भीड़ का हिस्सा बनने को तैयार है जो संगठित सामाजिक अपराधियों और उनके पालतू लेखकों तथा बुद्धिजीवियों की जानी पहचानी भीड़ है। क्यों वे अपनी स्वतंत्र दृष्टि और स्वाधीन सोच एवं पृथक राह अपनाने का दुस्साहस प्रदर्शित कर रही है ? क्यों वह उस सनातन सामाजिक स्त्री के नैसर्गिक रूप में देखने और इस पाखंडपूर्व दोगली सामाजिकता को नंगी करने पर उतारू हो आई है, जिससे न केवल रेशम और सारंग को बल्कि सीता और द्रोपदी यहाँ तक कि कुंती को भी नए सिरे से न्याय मिलने की संभावना है।"[26]

'चाक' स्त्री विमर्श पर आधारित एक उपन्यास है। परंतु इसमें वर्णित स्त्री की दशा स्त्री विमर्श के पैमानों और बंधे-बंधाएँ दायरों को तोड़ता है। हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श के केंद्र में अभी तक शहरी कामकाजी महिलाएँ मध्यवर्ग की महिलाओं की समस्याओं तक ही सीमित था परंतु 'चाक' में चित्रित स्त्री खेती किसानी से जुड़ी स्त्रियाँ हैं । इस बात को कथा साहित्य के प्रख्यात आलोचक मधुरेश भी रेखांकित करते हैं – "मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक' स्त्री विमर्श का उपन्यास है, जो इस विमर्श की देशज प्रकृति का खुलासा करती है। वे इस विमर्श को पढ़ी-लिखी, नौकरीपेश, बुद्धिजीवी स्त्री की सीमा से बाहर निकालकर गाँव और खेत-खलिहान में काम करती स्त्री से जोड़ती है।"[27]

स्वतंत्रता के बाद भारत के गावों का स्वरूप बदला है। इसके पीछे प्रमुख दो कारण है पहला पूंजीवाद का विकास और दूसरा जनतान्त्रिक सामाजिक जागरण । इन दोनों के फलस्वरूप एक संक्रमणसील समाज का निर्माण होता है। पुरातन कथाओं में चित्रित भारतीय संस्कृति अपने अतीत का

गौरव गान करती है। परंतु 'चाक' में यह गान करने वाली संस्कृति नहीं अपितु पिछड़ेपन और शोषण उत्पीड़न से मुक्त मानवीय संबंध की स्थापना करने-वाली आधुनिक संस्कृति है। 'चाक' उपन्यास की भूमिका लिखते हुए मैत्रयी पुष्पा ने भी स्वीकार किया कि अब बदलाव जरुरी है, वह लिखती है – "आज के समय में गँवई औरतों द्वारा सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक दायरों में जो मुखर हिस्सेदारी सामने आती है, वह महत्त्वपूर्ण है। स्त्रियाँ अपने तेवरों, निजी फैसलों और हस्तक्षेप के मामलों में अब जबरदस्त रूप से दिखाई देने लगी है। लगता है कि वह मान्यता थोथी खोखली है, जिसके तहत ग्रामीण स्त्री को अनपढ़, असभ्य और चेतनाशून्य मानकार गैरतलब नहीं समझा गया। बेशक मुझे कल्पनाशक्ति ने वह रचनात्मकता प्रदान की, जिससे यह उपन्यास कथा बनी।"[28] 'चाक' उपन्यास की कथा-भूमि ग्रामीण पृष्ठभूमि की है परंतु यह अपनी परम्परा से थोड़ा अलग है। इस उपन्यास में गाँव का सिर्फ मधुर-मनोहर स्वरूप ही चित्रित नहीं है अपितु उसमें व्याप्त राजनीति दाव-पेंच, छल, ईर्ष्या, द्वेष-विद्रोह और दमन का सजीव चित्रण है।

इस उपन्यास के उद्देश्य की अगर बात करे तो यह अपनी संपूर्णता में स्त्री मुक्ति की बात करता है और ख़ास ग्रामीण स्त्रियों की मुक्ति की। वर्तमान सामंती समाज द्वारा थोपे गए तमाम फैसलों को ध्वस्त करता है। यह उपन्यास ग्रामीण स्त्रियों की मुक्ति की आकांक्षा करती है और साथ ही आर्थिक मुक्ति की बात करती है। घर समाज और परिवार जैसे शब्दों का स्त्री जीवन में क्या महत्त्व होता है और यह शब्द हमें एक सीमा में बांधती है यह सोचने के लिए भी मजबूर करती है। 'चाक' कुम्हार के पैया को कहते हैं और यह समय चक्र को भी निरोहित करता है। 'चाक' में स्त्री विरोधी मान्यताओं का बहुत तार्किक रणनीति से तोड़ा गया है । 'चाक' का घोषण पत्र, लिखते हुए विजय बहादुर सिंह लिखते हैं - "सारंग का हौसला, तमाम मुश्किलों दहशतों और आक्रमणों से विचलित नहीं होता। उसकी यही जिजीविषा 'चाक' की पहचान बनी।"[29]

भाषा - शैली

मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य उत्तर भारत की श्रमजीवी जनता किसान, मज़दूर का साहित्य है। जन-साधारण की बोली और भाषा में जन-साधारण का साहित्य लिखा जाता है। हिंदी भारतीय जनता की

भाषा है। विभिन्न बोलियों में लिखा गया साहित्य हिंदी प्रदेश की जनता की आशा आकांशा सुख-दुःख को अभिव्यक्ति देने वाला साहित्य, जनता का साहित्य होता है। वह अपने जातीय स्वरूप को अभिव्यक्त करता है। भाषा का आधार वर्गीय नहीं होता है और न उसका जातीय आधार होता है। मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' में जाटों की भाषा एवं बोली को पूरी जीवंतता के साथ उभारा गया है। इस उपन्यास की भाषा चरित्रों के अनुसार है। इसमें जो पढ़े लिखे लोग हैं उनकी भाषा बहुत तत्सम प्रधान है। और बाकी जो अनपढ़ है वे मिली-जुली भाषा का प्रयोग करते हैं। संवाद की दृष्टि से यह उपन्यास बहुत ही प्रभावित करता है। परिस्थिति के अनुसार संवाद कहीं छोटे-छोटे तो कहीं लंबे-लंबे हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' उपन्यास में बहुत अधिक शैलियों का प्रयोग नहीं हुआ है। फिर भी यह उपन्यास उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जाती है। वस्तुतः इसमें लोकगीतों का जो प्रयोग हुआ है वह उपन्यास को नया आयाम देता है। मैनेजर पाण्डेय की यह उक्ति इस संबंध में बिल्कुल सही है कि 'चाक' की कथा एक स्तर पर गद्य में चलती है और दूसरे स्तर पर लोकगीत में। पूरे उपन्यास में लोकगीत का अधिकता से प्रयोग हुआ है। किंतु वे उपन्यास के बहाव को बाधित करने की अपेक्षा उसे सहयोग प्रदान करते हैं तथा कथा लोकगीतों के माध्यम से प्रतीकों में ही चलती है। बूढ़ी खेरापतिन रेशम की मौत के बाद चंदना की कथा गाने लगती है। स्त्री को उसकी स्वतंत्रता पर सामंती समाज किस प्रकार दमन करके उसे मौत के घाट उतार दिया जाता है। यह मैत्रेयी पुष्पा अपने कथा में खुद न कहकर अपने पात्रों के मुख से लोकगीतों के माध्यम से कहती है। सारंग इस लोककथा को गाने जाने से पहले कहती है – "दीदी मुझे चंदना से रेशम तक की कहानी मालूम है, पर अब आगे मत जान दादी---आगे जाओगी तो रसातल---बस करो दादी बस ! सारंग हाथ जोड़कर कर गिड़गिड़ाती है।"[30]

मैत्रेयी पुष्पा ने उपन्यास में अनेक जगहों पर लोकगीतों को गाँव की स्त्रियों के द्वारा गवाई है। कड़ियों की लोकगीत कथा के माध्यम से बूढी खोरापतिन स्त्रियों के चले आ रहे दमन को उजागर करते हुए अंत की कड़ी गाती है।

"पहली कटारी कुँवरजी मारियौजी

ए जी कोई दूजी लैलई बाँहण ओट

तीजी कटारी चन्दना के होयरा जी

माइल जाने चन्दना बेटी सासुरे जी

ए जी कोई सासूल जाने त्यौसुर,

चंदना की चिता चिनी बनखंड में जी।"[31]

इसी प्रकार राजा विरथम तथा रानी मंझा की कथा को प्रतीकात्मक रूप से सारंग के जीवन में पुत्र होने के बाद लोकगीत के माध्यम से व्यंजित किया जाता है।

"अरी लाज मेरी राखियों तू सारदे माय

कथा राजा विरथम की सुनाऊं भोरी माय

अरे औखा रानी मंझा की मैं बरनूँ भोरी माय।"[32]

शिल्प के स्तर पर 'चाक' औपन्यासिक उपलब्धि है। यह उपन्यास लोकगीतों और आंचलिकता से परिपूर्ण है। अनस्तित्व से अस्तित्व और व्यक्तित्व के लिए स्त्रियों का संघर्ष अपनी संशिलष्टता में संपूर्ण समाज का मार्मिक आख्यान है। इस उपन्यास में वाक्य का प्रयोग अधूरा छोड़कर किया जाता है और इसका प्रयोग आरम्भ से लेकर अंत तक चलता है। 'चाक' उपन्यास का महत्त्व बताते हुए राजकिशोर कहते हैं, "बेशक 'चाक' का महत्व इस बात में भी है कि यह भारतीय गाँव की उस महागाथा की एक नयी और अगली कड़ी है, जिसकी वास्तविक शुरुआत हिंदी में प्रेमचन्द से हुई और जिसे रेणु ने एक निश्चित ऊँचाई तथा परिणाम तक पँहुचाया था।"[33]

3. ख. स्त्री की सामाजिक स्थिति

साहित्य युग और समाज का दर्पण होता है। यह मनोभावों की अभिव्यक्ति का साधन है। इसमें युग और समाज की समस्याओं का समाधान करने का प्रयास लेखक करता है। आज के भूमंडलीकरण में लगातार चल रही स्त्री देह का व्यापार और उसमें आजादी के आत्मछल या गुलामी के सुख को भोगती स्त्री की स्वैच्छिक शिकरत गरीबी की रेखा से नीचे महज अपने अस्तित्त्व के लिए संघर्ष करती आधी से ज्यादा आबादी अपनी अस्मिता की गुहार लगाते दलित और घरून की सीलन भरी चौहद्दियों में गीली लकड़ी की तरह घुंघुवाती पूरी की पूरी मातृशक्ति के परिदृश्य में मैत्रेयी पुष्पा की रचनाएँ प्रतिरोध की दीवार की सृष्टि करने वाली हैं । सदियों से चली आ रही यह पुरुष सत्तात्मक समाज में नारी अपनी अस्मिता और हक़ का सवाल उठाते हुए अपने को एकजुट नहीं कर पाई थी। परंतु आज की स्त्री सड़कों पर उतरकर व्यवस्था की अमानवीयता के खिलाफ आंदोलन करती नजर आती है। एक बड़ी बात यह है कि मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं में स्त्रियों के मुद्दे विशेषकर ग्रामीण स्त्रियों के मुद्दे केन्द्रीय विषय बनाकर उठाया गया है, जो अब तक हाशिए पर पड़े हुए थे। स्त्री की अस्मिता से जुड़े सवालों को कथा साहित्य के परिदृश्य पर मैत्रेयी पुष्पा ने उठाया है जो नारीवाद के विभ्रमों से बचते हुए, उसकी सीमाओं से वाकिफ स्त्री मुक्ति और स्त्री अस्मिता के सवाल को औरत मात्र की मुक्ति और अस्मिता से जोड़ती है । उन करोड़ों औरतों की मुक्ति और अस्मिता से जो नगरों और महानगरों की चकाचौंध से दूर, खेतों खलियानों, झुग्गी- झोपड़ियों, मीलों और खदानों में तथा बंद घरों की सीलन भरी कोठरियों में काम कर रही हैं , श्रम कर रही हैं, सुलग और घुट रही हैं। नारी मुक्ति को एक बेहतर समाज-रचना के दायरे में विश्लेषित करनेवाली, बड़े सामाजिक परिप्रेक्ष्य में इस मुक्ति को विश्लेषित करने वाली विशद करने वाली मैत्रेयी पुष्पा हिंदी कथा साहित्य की उपलब्धि है। उनका नारी लेखन तथाकथित नारीवादी लेखन नहीं, नारी केंद्रित सवालों के बड़े आशयों में लानेवाला, नारी की मुक्ति को साधारण जन की सार्वदेशिक मुक्ति से जोड़नेवाला, पर बेहत्तर मानवीय और तर्कसंगत सामाजिक संरचना में नारी को उसकी सही हैसियत के साथ प्रतिष्ठा देने की कोशिश में लगा-नारी अस्मिता का प्रामाणिक लेखन है।

मैत्रेयी पुष्पा के स्त्री विमर्श का प्रधान क्षेत्र हिन्दू समाज है, जिस समाज में उन्होंने स्वयं जीवन जिया है । भारतीय स्त्रियों की स्थिति एवं छवि को इन्होंने अपने उपन्यास में सामाजिक-सांस्कृतिक परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य (मूल्य आदि को देखने की दृष्टिकोण) में जांच-पड़ताल किया है । जहाँ स्त्री के व्यक्तित्व को दबाकर एकांगी बनाने का जाना-बुझा उधम (श्रम,मेहनत) हुई है । इनके उपन्यास 'चाक' में सामजिक परिस्थितियों और समस्याओं का ऐसा पटल है, जिसमें ये परिस्थितियाँ और समस्याएँ अभिव्यक्ति पाती हैं । इनके उपन्यास इसी परिप्रेक्ष्य में न केवल समाज, बल्कि जीवन का भी दर्पण हैं । लेकिन यह मात्र निर्जीव दर्पण नहीं हैं । वे इनमें सामाजिक यथार्थ का चित्रण करती हैं । यह चित्रण पाठक को ही नहीं, बल्कि पूरे समाज को समान ढंग से असर करता है ।

मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'चाक' में नारी का संघर्ष दरअसल एक ऐसा समाज व्यवस्था के लिए संघर्ष है जिसमें बराबरी हासिल करने की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ मौजूद हैं । यह एक सामंतीवादी समाज ही हो सकता है जो व्यक्तिगत संपत्ति और वर्ग- विभाजन को खत्म करेगा, जिसमें केवल नारी का परिचय घर में उसकी भूमिका से न होकर, समाज में उसके योगदान से होगा । इनके उपन्यासों का प्रमुख क्षेत्र स्त्री के सामाजिक जीवन ही रहा है । इनके उपन्यास औरत का वजूद होने का उपन्यास है । मैत्रेयी पुष्पा ने वंचित के अधिकारों की लड़ाई का सरगना बनाकर नारी के चरित्र को सामाजिक सरोकार का आयाम देने की कोशिश की है । इनके स्त्री पात्र सामाजिक रुढ़ियों से मुक्त होकर अपने जीवन को और अपने समाज को सुखदायक बनाने का प्रयत्न करते हैं । मनुष्य के रूप में उन्होंने सारंग के माध्यम से परिवर्तित परिस्थितियों में नारी का नया स्वरूप तथा प्रगतिशील चेतना को अभिव्यक्ति दी है । सारंग समाज की तथाकथित नैतिक मर्यादाओं पर कोठर प्रहार करती हुई समाज में एक समुन्नत स्थान प्राप्त करती हैं । पुरुषसत्तात्मक समाज स्त्रियों के शोषण एवं दमन का कारण हैं । इस संदर्भ में डॉ. निर्मला जैन अपने विचार व्यक्त करती हुई कहती हैं – "कड़वी सच्चाई यह है कि पुरुष-प्रधान समाजों में सदियों से महिलाओं का दमन और शोषण होता रहा है, समाज में उनकी भूमिका और उनकी सामाजिक हैसियत का निर्धारण पुरुष के द्वारा हुआ है । समाज के हाथों में जो दर्जा स्त्री को दिया जाता है, वह किसी हद उसकी मानसिक बनावट का नियामक होता है । औपनिवेशिक मानसिकता इस पूरे प्रश्न को पुरुष के खिलाफ स्त्री या 'पुरुष बनाम स्त्री' के ढाँचे में देखने की मज़बूरी पैदा करती है । कुल जमा नतीजा यह होता

है कि वह या तो पुरुष प्रदत्व परिभाषा में अपनी सार्थकता तलाशती हुई उसके समर्थन में खड़ी हो जाती है या विरोध में। इसलिए तमाम महिला-रचनाकारों ने इसी 'एंग्जाईट ऑफ़ आथरशिप के मानसिक चौखटे में रचना-कर्म को अंजाम दिया है।"[34] इस उपन्यास में जिन सामाजिक कठिनाईयों से मैत्रेयी पुष्पा की नायिकाएँ जूझती हैं उनमें – नारी का सामाजिक अधिकार, स्त्री-पुरुष यौन संबंध, बेरोजगारी, नारी समानता, देहज, विधवा नारी, अनमेल विवाह, अछूत समस्या, नारी समानता है जिनका वर्णन निम्नलिखित है।

सामाजिक अधिकार :-

नारी मुक्ति सही मायने में तभी होगी जब उसे सामाजिक अधिकार प्राप्त होगा। नारी मुक्ति आंदोलन के कारण आज नारी समाज को बदलने के प्रयास में कदम उठा रही है। स्वतंत्र रूप से नारी समाज में विचरण करना तथा अपनी अलग अस्मिता को बनाए रखने के साथ-साथ राजनैतिक, क़ानूनी, पारिवारिक तथा आर्थिक इन समस्त अधिकारों को प्राप्त कर लेने की संकल्पना उसमें निहित है। मैत्रयी पुष्पा के शब्दों में – "हमारा मन जो कहता है, पाँव जहाँ ले चलते हैं, इन्द्रियाँ जिस सुख की आकांक्षा करती है, मनुष्य होने के नाते वह हमारे कुचेष्ठाएँ नहीं जन्मसिद्ध अधिकार है।"[35]

'चाक' की सारंग ग्रामीण स्त्री होते हुए भी उन प्रचलित मान्यताओं तथा विश्वासों को तोड़ती है जिनमें यह माना जाता है कि पति ही परमेश्वर होता है तथा नारी का यह कर्तव्य है कि वह उसकी अनुगामनी बनी रहे। सारंग श्रीधर से शारीरिक संबंध स्थापित करती है और समाज की इस मान्यताओं को तोड़ देती है। जिस समाज में स्त्रियों को पुरुषों के सामने और पंचों के समाने नहीं बोलने दिया जाता था। इस उपन्यास की नायिका रेशम विधवा होने के बाद भी गर्भ को जीवित रखती है। मैत्रेयी पुष्पा अपने पात्रों के माध्यम से एक नई नारी को जन्म देती है, जिसमें अपूर्व साहस तथा चेतना है तथा जो समस्त पुरानी मान्यताओं और विश्वासों की धज्जियाँ उड़ाते हुए अपनी अस्मिता के संघर्ष करती है। मैत्रेयी की रचनाओं में नारी का अपने अधिकार की प्राप्ति के लिए विद्रोह तथा विरोध की भाषा पायी जाती है। नारी अपनी इच्छा-अनिइच्छा को जानती है। अपने अपमान का प्रतिकार वह करती है इस प्रकार उपन्यास का अंत आते-आते सारंग का विद्रोहिणी बनकर बंदूक धारणी रूप देख सकते हैं। बेटा चन्दन को रंजीत दलवीर के

साथ आगरा भेजना चाहता है पर सारंग इसका विरोध करती है और अंत में विद्रोहिणी बनकर बंदूक उठाती है। जैसे – "पीटकर दोगुनी ताकत अनुभव हुआ सारंग, को बुरी तरह लपक पड़ी हाथ-पाँव में, पागल, विक्षिप्त की भांति दौड़कर खूंट से बंदूक उतारती और बिजली की सी फुर्ती से चला दी दोनाली – धायँ ! धायँ ! असल मर्द है तो छू चन्दन को ! छ ? रणचंडी बनी खड़ी है सारंग।"[36]

इस उपन्यास की नायिका अपने जीवन के नाना क्षेत्रों में संघर्ष करती हुई, भीतरी और बाहरी दबावों और तनावों को सहती हुई कभी-कभी टूटने के कगार तक पहुँच जाती है। किंतु उसकी जिजीविषा उसे टूटने से बचा लेती है। उपन्यासकार ने इस उपन्यास में नारी के द्वन्द्वात्मक स्थिति का भी चित्रण किया है। जिसमें अस्मिता के साथ-साथ, रिश्तों को बनाए रखने की भी उसकी जदोजहद बनी रहती है।

पितृसत्तात्मक समाज स्त्री-पुरुष समानता को सहज रूप में नहीं ले पाता है। बौद्धिक तथा तार्किक ग्रहणशीलता में स्त्री-पुरुष समान स्तर पर माने गए हैं। लेकिन जहाँ अधिकार की बात आती है वहाँ पुरुष अपने शासन को छोड़ना नहीं चाहता। कहने का मतलब यह है कि जितना बदलाव स्त्रियों में हुआ उतना पुरुषों में नहीं है। पुरुष द्वारा किए गए अत्याचारों तथा अन्यायों में नारी अब चुपचाप सहन नहीं करती, बल्कि जवाब देती है। इस उपन्यास की नायिका सारंग में हिम्मत, साहस और विद्रोही स्वभाव कूट-कूटकर भरा हुआ है। उसे कभी-कभी खुद के हिम्मत पर आश्चर्य होता है। रंजीत का व्यवहार और सारंग का साहस सीधे-सीधे उसे विद्रोही बना देता है। सारंग और श्रीधर की निकटता से बौखलाया हुआ रंजीत जब श्रीधर को बेरहमी से पिटता है तो सारंग और अधिक विद्रोहिणी बन जाती है। वह सभी नैतिक बंधनों को तोड़कर श्रीधर से शारीरिक संबंध स्थापित कर लेती है। रेशम जो सारंग की बुआ की बेटी है वह भी इस उपन्यास की विद्रोहिणी पात्र है। रेशम को अपना उठाया हुआ कदम परपुरुष से गर्भधारण करना-गलत नहीं लगता। जिस प्रकार अपनी सास से वह बातें करती है उससे उसकी विद्रोही प्रवृत्ति दिखाई देती है। पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरी शादी कर सकता है पर पति की मृत्यु के बाद पत्नी मात्र जीवन भर उसके दुःख में डूबी रहे यह उसे स्वीकार नहीं है। वह मनुष्य होने के कारण देह की जो आवश्कता है उसे पूरा करना जरुरी समझती हैं। रेशम प्रेम और मातृत्व के लिए तरसनेवाली होने के कारण अपने पेट के गर्भ का गर्भपात करना नहीं चाहती। उसके विचार में अपने स्वर्गवासी पति की संपत्ति और जमीन-जायदाद पर उसका अपना

अधिकार है। मैत्रेयी पुष्पा ने सामाजिक अधिकार का प्रस्तुतीकरण किया है, जो नारी पहले चुप-चाप सब कुछ सहती थी अब वे नहीं हैं। पढ़ी-लिखी हो या अनपढ़ हो पुरुष समाज द्वारा अपने अधिकार के हनन को वह समझ रही है और विद्रोह के स्तर पर अभिव्यक्ति दे रही है।

स्त्री-पुरुष यौन संबंध :-

इस उपन्यास में स्त्री-पुरुष के यौन संबंधों को लेकर बेबाक चित्रण हुआ है। यह संबंध पति-पत्नी तथा अन्य स्त्री-पुरुष सम्बन्ध के रूप में विश्लेषित है। मैत्रेयी पुष्पा की दृष्टि में 'प्रेम' शब्द और 'व्यभिचार' शब्द को अलग- अलग देखा जाए तो दोनों एक दूसरे के विपरीत आचरण में हैं। प्रेम जहाँ निछ्लता, विश्वास और ईमानदारी भरा लगाव है, वहीं व्यभिचार, कपट, चोरी और बेईमानी है। लेकिन सामाजिक विड़ंबना यह है कि अक्सर ही प्रेम को व्यभिचार से जोड़ दिया जाता है। खास तौर पर विपरीत लिंग प्रेम को। यह उपन्यास छापने के बाद बवाल मचा था, क्योंकि मैत्रेयी पुष्पा ने नायिका की ओर से लिख दिया था – यह व्यभिचारी नहीं मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है – प्रेम, जो प्रेमी का स्पर्श करना चाहता है, उसके दुख दर्द को छूना चाहता है, उसको तकलीफों और प्राणवेला हमलों से बचाना चाहता है, किसी भी मनुष्य के अधिकार में आता है तो फिर स्त्री के हक़ में क्यों नहीं ?"[37] नारी स्वतंत्रता तथा स्वछंदता की प्रेरणा ने उनमें इस मानसिकता का निर्माण किया है। नारी पुरुष के सम्पर्क में आत्मनिर्भरता तथा प्रशासनिक क्षमता के कारण आयी है। इस उपन्यास में विवाहपूर्व तथा विवाहत्तेर यौन संबंध अमान्य न होकर सहज रूप में नारी ले रही है। अर्थात् इस संबंध में नारी स्वीकृति दे रही है। इस संदर्भ में लेखिका का विचार कुछ इस प्रकार है – "मैं ने अपनी नायिकाओं को प्रेम के मामले में पूरी छुट दी है क्योंकि प्रेम करना नैसर्गिक प्रवृत्ति में आता है जिसमें धूर्तता का लेशमात्र भी नहीं होता।"[38]

इस उपन्यास में यौन शोषण एवं पुरुष के अत्याचार के शिकार बनने वाली असहाय नारी को देखा जा सकता हैं। इस उपन्यास की नारी पात्र केका ससुराल नहीं जाना चाहती। पति उसका घर पर नहीं रहता। ससुर और उसके मित्र दारु पीकर उसे छेड़ते और मारते-पीटते रहते हैं। इसलिए वह ससुराल नहीं जाना चाहती – "केका के घर हंगामा हो गया। माँ ने केका को बहुत पीटा। वह ससुराल से आने का बहाना नहीं गढ़ पायी, केवल बोली, वह नहीं रहता, तो मैं कैसे रहूँ। ससुर पीकर गैरहोस पड़ा रहता है, उसके यार

दोस्त मुझे---- आगे कुछ बताते-बताते वह खुब रोई थी ।"[39] यह यौन संबंध अनैच्छिक तथा बलात्कार के रूप में परिलक्षित है और स्त्री पुरुष की अमानवीय रूप को दर्शाता है।

आज नारी अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को रूपायित करने के लिए उन सभी मूल्यों, मानदंडों, नियमों तथा आदर्शों को त्यागना चाहती है, जो केवल स्त्री होने के नाते उसी के लिए बनाए गए हैं। स्त्री-पुरुष संबंध को लेकर तथा स्त्री जीवन के लिए पुरुष समाज ने जो भी नैतिक मानदंड बनाए है उसका पालन स्त्री अब अकेले नहीं करना चाहती। अतः आज स्त्री भी उन सभी नैतिक अधिकारों को पाना चाहती है जिसका हक़ केवल पुरुषों को था। वर्तमान समय में स्त्री के लिए नैतिक असमानता का यह रूप अस्वीकारणीय है। मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं में भारतीय समाज की परम्परागत नैतिकता का चित्रण परिलक्षित होता है। पुरुष के जैसे आज नारी भी विवाहपूर्ण अथवा विवाहोपरांत सेक्स की तुष्टि (संतोष) चाहती है। स्त्री के वे सभी नैतिक अधिकार जो पुरुषों के लिए बने हैं उसे अपने लिए भी समाज से ले लेना चाहती है। इस उपन्यास की नायिका सारंग सभी नैतिक बंधनों को तोड़कर श्रीधर से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। वह श्रीधर के साथ शारीरिक संबंध बनाने में गर्व महसूस करती है और सोचती हैं - "सारंग बोले क्या? अपने में खोयी हुई सी... मेरे दिलों दिमाग पर क्यूँ छा गया है वह आदमी ? उसके आस-पास होना ही मेरे लिए सर्वसुख है। श्रीधर का बोलना चलना देखना ही इस गाँव की उदासी में खुशियों की लहरें भर देता हैं। मैं कैसे कहूँ रंजीत से कि मेरी जिंदगी सूनी थी, घायल थी, लाचार थी। वे आए तो लगा घुटन भरे आसमान को फोड़कर हवा का कोई ताजा झोंका आया है, जो मेरे भीतर नै साँसें... घावों पर शीतल मरहम और सुनसान में मेले ! तुम इसे कोई भी नाम दो। ज्ञान-ध्यान कहो, या प्यार-प्रति ।"[40] इस संबंध से सारंग पर दाम्पत्य अनिष्ठा का कलंक पड़ जाता है। डॉ. मधु संधु ने सारंग के विद्रोही स्वभाव के संदर्भ में लिखा है – "सारंग का विद्रोह यौन नैतिकता के दोगले मानदंडों के विरुद्ध, ग्रामीण द्वेषों के विरुद्ध है। पति द्वारा मिलने वाला अपमान और वात्सल्य की छिना-झपटी उसे और भी विद्रोही कर देते हैं।"[41]

इस उपन्यास में ही इस नैतिकता का दूसरा रूप रेशम में देखा जा सकता है। पच्चीस साल की अवस्था में रेशम भरे यौवन में विधवा हो जाती है। वह पति के मरने के पाँच महीने बाद ही गर्भवती हो जाती है। रेशम को अपने द्वारा उठाया गया कदम विधवा होने के बाद पर पुरुष से शारीरिक संसर्ग और गर्भधारण

करना – गलत नहीं लगता। जिस प्रकार वह अपनी सास से बाते करती हैं उससे उसकी विद्रोही प्रवृत्ति सामने आती है। पत्नी की मृत्यु के पश्चात पति दूसरी शादी कर सकता है और पति की मृत्यु के बाद पत्नी मात्र जीवन भर उसके दुःख में डूबी रहे, यह उसे स्वीकार नहीं हैं। वह मनुष्य होने के कारण देह की जो आवश्कता है उसे पूरा करना जरुरी समझती है। जब उसकी सास उसके बच्चे गिराने और डोरिया को अपनाने की बात कहती है तो रेशम अपनी सास से लड़ जाती है। उसे किसी अन्य पुरुष से संबंध बनाना कोई पाप नहीं लगता है। वह प्रेम और मातृत्व के लिए तरसने वाली है। अपने कोख में जो बच्चा है उसके पिता कौन है, यह रहस्य बार -बार पूछने पर भी वह खोलना नहीं चाहती। उसके विचार में बिना बाप की संतान पाप नहीं है बल्कि पुन्य है – "मैं जो पुत्र कर रही हूँ अम्माँ, उसे पाप न कहो। बिना बाप के बालक को भगवान पाप मानता तो कुँआरी विधवा की कोख सुखा डालता।"[42] इस प्रकार यह उपन्यास परम्परा तथा प्रथाओं को धज्जा बताती हुई नारी-जीवन के यथार्थ को खोलती है और समाजशात्र के स्तर पर स्वयं का मूल्यांकन करती है।

बेरोजगारी :-

भारतीय समाज में बेरोजगारी की समस्या मुख्य समस्या बनती जा रही है। बेरोजगारी उस दशा को कहते हैं जिसमें कि कार्य करने के लिए व्यक्ति इच्छुक है परंतु कार्य प्राप्त होना संभव नहीं है। बेरोजगारी एवं निर्धनता का घनिष्ठ संबंध है। जनसंख्या का तेजी से बढ़ना बेरोजगारी का प्रमुख कारण है। हमारे देश में जनसंख्या के अनुकूल साधनों के विकास की गति मंद हैं। इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति को उसके अनुकूल कार्य नहीं मिल पाता एवं बेरोजगारी को जन्म देता है। आर्थिक व्यवस्था के आधार पर समाज के वर्ग निर्धारित हो गए हैं एवं साथ-साथ कार्यक्षेत्र भी है जिसके कारण संपति थोड़े व्यक्तियों के हाथ में सुसज्जित है। भारतीय समाज में पीढ़ी-दर पीढ़ी कार्य हस्तातंरित होते हैं। इस कारण नेता का बेटा नेता एवं अभिनेता का बेटा अभिनेता बनता है। इन्हें रोजगार प्राप्त करने के लिए संघर्ष की आवश्यकता नहीं होती तथा पैतृक सम्पति की तरह इन्हें रोजगार भी प्राप्त हो जाता है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, अधिकतर भाग उसका कृषि पर निर्भर है। कृषि कार्य वर्ष में कुछ महीने ही हो पाता है। इसके बाद कृषक को बेरोजगारी का सामना करना पड़ता है। लेखिका ने गाँव के

ढाँचा को बड़ी गहराई से समझा है और तमाम विसंगतियों एवं बारीकियों को बड़े सुंदर तरीके से प्रस्तुत किया है जिससे गाँव का वास्तविक स्वरूप उद्घाटित होता है। मैत्रयी पुष्पा ने इस उपन्यास में बेरोजगार की स्थिति को इस प्रकार दिखाया है – "प्रत्येक व्यक्ति छोटी नौकरी करके खुश नहीं होना चाहता उसे बड़े पद की लालसा होती है यही स्थिति रंजीत की भी थी। "माना की मेरी लालसा किन्हीं दिनों किसी ऑफिस में बड़ा अफसर बनने की थी और मैने आवेदन-पत्र भी भरे थे, लेकिन वह मेरा अज्ञान था।"[43] शहरों में ही नहीं बल्कि ग्रामीण परिवेश में व्यक्ति शिक्षा की ओर आगे बढ़ता जा रहा है। फतेहसिंह का बेटा पंद्रहवीं जमात का परीक्षा दे रहा है लेकिन नौकरी मिलना दूर की बात लगती है। "मगर इतनी विद्या पढ़कर फतेहसिंह के घर में जन्म लेकर भी जिसकी नौकरी न लगे उससे ज्यादा करमहीन कौन ? उसके पिता खूबाराम पूरे भोलाराम है। दो-तीन जगह नौकरी के लिए रूपए भरे थे सब मारे गए। रंजीत को भी कहीं नौकरी पेशा नहीं हो पाया। यह बेरोजगारी ऐसा आभिशाप है जिसमें आदमी का महत्त्व नहीं रहता। घर परिवार और समाज में उसे हीन दृष्टि से देखा जाता है। मैत्रेयी पुष्पा ने पारंपारिक एवं आधुनिक व्यक्तियों की विपरीत विचारधाराओं के माध्यम से व्यक्ति की मानसिकता को व्यक्त किया है। फतेहसिंह के लिए नौकरी बड़ी चीज है भले वह कोई भी हो, लेकिन फतेह प्रधान चपरासी की नौकरी छोड़कर हुकमा को कहीं भी भर्ती कर सकते हैं। जबकि बरजेरसिंह की विपरीत विचारधारा व्यक्त है "जवान बेटे की लाश बूढ़े पिता की लाश नहीं होती कि फूलों से सजाएँ और विमान में ले जाएँ। जवान लाश देखना अपनी मौत देखना है ऐसा ही बेटा था वो ट्रैक्टर पर बैठकर खेतों की ओर चल देता। हमारी छाती भी चौड़ी होती किसान के घर किसान का बेटा जवान हुआ है। पर तुझे तो कुर्सी के सपने आते थे, जिसके चारों पाए हमारी हथेलियों पर जमें थे।"[44]

आज का पढ़ा-लिखा युवक खेती करने के बजाए नौकरी के सुनहरे सपने देखता है। लेखिका ने रंजीत के माध्यम से यह संदेश दिया है। उन्होंने इस उपन्यास में बेरोजगार की स्थिति, परिस्थिति एवं उससे उत्पन्न पारिवारिक स्थिति एवं व्यक्ति की मानसिकता को अभिव्यक्त किया है।

दहेज :-

समाज में दहेज प्रथा भयानक समस्या है। कोढ़ की तरह दहेज समाज की जड़ों में फैल चुका है। दहेज का अर्थ है वह रकम जो विवाह के समय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लड़की के माता-पिता से ली जाती है। हिंदी शब्द सागर में इसे इस प्रकार परिभाषित किया गया है "वह धन या सामान जो विवाह के समय कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को दिया जाता है।"[45] विवाह के समय पहले भी पिता अपने पुत्री को वस्तुएँ दिया करते थे। समय बदल गया नहीं बदली तो लोगों की इच्छा एवं लालच की प्रवृत्ति। व्यक्ति धनवान बनने के लिए अपने पुत्र का ही सौदा कर देता है। इसे मिटाने का चेष्टा न्याय एवं प्रशासन ने किया है लेकिन उन्हें पूर्ण रूप से सफलता नहीं मिल पाई है। कन्या पक्ष का शोषण आज भी वर पक्ष दहेज के लिए कर रहें हैं।

मैत्रयी पुष्पा ने इस उपन्यास में दहेज रूपी समस्या पर लेखनी चलाकर उसे समाज के सामने मुखरित करने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में दर्शया गया है कि माँ अपनी बेटी के सुख के लिए अपना मान, स्वाभिमान, धन सब कुछ लड़के वालों के चरणों में रखने को तैयार है। गुलकंदी की माँ किसी तरह अपनी पुत्री का घर रतनलाल के साथ बसाना चाहती है। जैसे- "भले मुझे रतनलाल के बाप के गोड़ पकड़ने पड़ें, रतनलाल की हा हा खाँऊ, अपनी मड़इया गिरवी-गहने धरूँ, पर तेरे लिये खसम जुटा कर मानूँगी।"[46] लेखिका ने इसके माध्यम से समाज के सामने ऐसे व्यक्तियों को दिखाया है जो अपने बेटे को पाल-पोसकर बड़ा करते हैं उस दिन के लिए जब उसका सौदा किया जाएँ एवं कन्या पक्ष से अच्छी कीमत वसूली जाए। जब दहेज के लालची लोगों को दहेज नहीं मिलता तो उसका बड़ा नतीजा कन्या पक्ष को झेलना पड़ता है।

इस उपन्यास में लेखिका ने यह भी दिखाया है कि दहेज के लालची लोगों के अलावा ऐसे लोग भी समाज में विद्यमान है जो दहेज लेने एवं देना आज भी गुनाह मानते हैं। समाज में आज ऐसे लोग विद्यमान है जो आदर्श विवाह में विश्वास करते हैं अर्थात बिना दहेज के विवाह। फतेहसिंह के पुत्र हुक्म की नौकरी पक्की होने से दहेज देकर रिश्ता करने वालों की संख्या एवं कीमत में भी बढ़ोत्तरी हो गयी। पहले पचास हजार फिर दो-दो लाख के आसामी आने लगे परंतु गाँव में चर्चा थी "एक बात है, टेलीविजन, सोफा नहीं ले रहा फतेह। फूटी कौड़ी भी नहीं लेगा दहेज में। कहता है आदर्श ब्याह करके दिखा दूँगा गाँव के लोगों को।

फतेहसिंह का छोटा बेटा राकेश का कहना है कि समाज में लोग विद्वान हैं धन से अधिक नारी शिक्षा को महत्त्व देते हैं। "हमारे दादा ने साफ कह दिया बेटी वाले से कि एक पइसा भी नहीं लेंगे। छोरी सोलह किलास पढ़ी है यह धन है हमारा। कोई सामान फमान नहीं। प्रधान है हम, गाँव के आदर्श।"[47] आज का युवा वर्ग यदि प्रयास करे तो दहेज कुप्रथा का समाज से मिटा सकता है। समाज में जागृति एवं चेतना पैदा कर सकता है ताकि सांस्कृतिक तथा सामाजिक प्रतिमान बदल सकें। इस उपन्यास में रतनलाल के माध्यम से यह मानसिकता लेखिका ने दिखाया है। मैत्रयी पुष्पा ने दहेज की कुरीतियों का प्रस्तुतिकरण इस प्रकार किया है ताकि जो लोग दहेज पाने के इच्छुक है वे इस समस्या की विकरालता से अवगत हो जाएँ। इन्होने इस उपन्यास में ऐसे आदर्श पात्रों को प्रस्तुत किया है जो समाज के लिए प्रेरणास्वरूप बन सकें।

विधवा विवाह :-

भारतीय समाज आज भी प्रथाओं एवं मान्यताओं से ग्रस्त है। हिन्दू समाज में विधवा का शोषण होता है उसे विभिन्न विषमताओं से गुजरना पड़ता है। उसका जीवन पति की मृत्यु के बाद मृत प्राय हो जाता है उसकी कोई सामाजिक सत्ता नहीं होती है, न ही वह परिवार के विकास में सहयोग दे पाती है और न ही समाज के क्योंकि इस प्रकार का अधिकार पति की चिता के साथ जलकर ख़ाक हो जाता है। "एक जमाने में बंगाल की औरतें विशेष रूप से विधवाएं काशी सेवन करने जाया करती थी। काशी सेवन उनकी विवशता थी। जब परिवार में उन्हें उपेक्षित कर दिया जाता था, सारे अधिकार छीन लिए जाते थे, सारी संपति से उन्हें विमुक्त कर दिया जाता था, तब पूरे अपमान को न झेल पाने के कारण वे वहाँ से चले जाने को ही अपने लिए अच्छा मानती थी।"[48] भले विधवाएँ विरही जीवन व्यतीत करती थी तथा इसे भाग्य का प्रकोप मानकर अपना जीवन बिता देती थी लेकिन आज के उपन्यासकारों ने इसका चित्रण भिन्न धरातल पर करते हैं, उन्होंने विधवाओं को पूर्ण सहानुभूति प्रदान की है।

अधिकांश उपन्यासों में मैत्रेयी पुष्पा ने इस समस्या का कोई न कोई दृश्य एवं संकेत अवश्य ही प्रस्तुत किया है। पिता के मरने के बाद स्त्री के जीवन बसंत पतझड़ में परिवर्तित हो जाता है। स्त्री की स्थिति समाज द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार दयनीय बना दी जाती है। जीवन के रंगों से उसका कोई

सरोकार नहीं होता है। विधवा स्त्री के द्वारा कोई शुभ कार्य करना अपसगुन माना जाता है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की दशा सोचनीय है। एक ब्याहता स्त्री के लिए उसका पति ही उसका जीवन है, अगर वह नहीं है तो पति के साथ उसका जीवन भी ख़त्म ही मान लिया जाता है। भारतीय समाज में विधवा नारी का जीवन संकटग्रस्त होता है। यह समाज भूखे-भेड़ियों से भरा पड़ा है जो स्त्री को अकेला देखते ही झपटने के लिए तैयार रहता है। ऐसे समाज में विधवा का सीधा-साधा जीवन यापन करना अत्यंत ही कठिन है। समाज की अश्लील दृष्टि से विधवा स्त्री अपने को कब तक बचा सकती है और विड़म्बना यह है कि एक न एक दिन वह इस शिकंजे में अवश्य फँस जाती है।

लेखिका ने इस उपन्यास में रेशम के माध्यम से नए प्रतिमान प्रस्तुत किये हैं। जैसे-"रेशम विधवा थी जमाने के लिए, रीति-रिवाजों के लिए, शास्त्र पुराणों के चलते घर और गाँव के लिए। विधवा सिर्फ विधवा होती है। वह औरत नहीं रहती फिर। यह बात पता नहीं उसे किसी ने समझाई की नहीं ? किसी ने कहा ही नहीं कि इच्छाओं के रेशम तारों में आग लगा दे रेशम ? उसने तो केवल इतना माना कि पेड़ हरा-भरा रहे तो फूल-फल क्यों नहीं लगेंगे ? ऐसा हो सकता है कि ऋतु आए और बल्लरी लता फुले नहीं ? औरत ऋतुमती हो और आग दहके नहीं ?"[49] विधवा का भारतीय समाज में नैतिक रूप से गर्भधारण करने का कोई अधिकार नहीं है और जब कोई स्त्री इस नैतिक विधान को तोड़ती है तब उसे अश्लील की उपाधि से सुसज्जित किया जाता है। इस उपन्यास में रेशम, करमवीर के मरने के बाद गर्भधारण करती है। रेशम सास के निर्लज्जतापूर्ण कथा का उत्तर बड़ी सहजता से देती है। रेशम को अपना जीवन देकर पतिव्रत धर्म को तोड़ने की सजा चुकानी पड़ती है। दूसरी तरफ पांचन्न बीबी ने विधवा होते हुए भी मेहताबसिंह से दैहिक संबंध स्थापित किया। अपराध स्वरूप पांचन्न बीबी पिता की सजा की हकदार बनती है जिसका मार्मिक चित्रण दर्शाया गया है - "चिमटा आग में दहकाया और उन लाल जलती हुई लोहे की पत्तियों को बड़े सहारे से नथिया भंगिन ने पान्चन्न बीबी की छातियों की काली जगह पर दिया, चूचियां दाग दी गई। सब निश्चिन्त हुए, अब न फूटेगी जवानी की गुद्दियाँ। बहुत फड़कती थी।"[50] वह भूल गयी थी कि वह एक विधवा है जिसे प्रेम करने का कोई हक़ नहीं है। इस प्रकार पुरुषात्मक समाज में नारी पुरुष के शोषण की शिकार होती है। नारी ही नारी को सुखों से वंचित करना चाहती है, उसका कारण सामाजिक बंधनों में विश्वास हो या जीवन की वह छटपटाहट जिससे वह खुद मुक्त नहीं हो पायी। मैत्रेयी पुष्पा ने सामाजिक

धरातल पर विधवा समस्या को अभियक्त किया है तथा विधवा स्त्रियों का समर्थन करके समाज को नवीन मौलिक दृष्टि प्रदान की है।

अनमेल विवाह :-

अनमेल विवाह एक सामाजिक कुरीति है, जिसमें नारी की दासता एवं शोषण का रूप प्रकट होता है। पिता की उम्र के व्यक्तियों के साथ किशोरावस्था की लड़कियों का विवाह कर दिया जाता है। अनमेल विवाह के मुख्य दो कारण माने जा सकते हैं – प्रथम यह है कि माता-पिता अर्थाभाव से ग्रस्त होने के करण अपनी बेटी का विवाह वृद्धा पुरुष या पिता की उम्र के व्यक्ति के साथ कर देते हैं दूसरा कारण यह भी है कि आज भी हमारे समाज में लड़कियों की राय को महत्त्व न देकर उसे परिवार द्वारा आरोपित संबंध को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जाता है। मैत्रेयी पुष्पा ने अनमेल विवाह से उत्पन्न कटु परिस्थितियों का विराट चित्रण किया है। इस उपन्यास में बैकुंठी अनमेल विवाह की शिकार है। यह भँवर की अम्मा के वेदनापूर्ण कथन से दृष्टिगत है, "अपनी मौसी को देखता है ? बैकुंठी को ? मेरी ही सगी बहन है। थानसिंह ने मेरे भइया को भरमा लिया और खरीद ली मेरी अबोध बहन। नत्था चालीस का था तब यह तेरह की।"[51] नारी हमारे समाज में शताब्दियों से परतंत्र रही है। इस कारण अनमेल विवाह की शिकार भी वहीं होती है। मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में इस समस्या की तमाम विसंगतियों को उजागर करने का प्रयत्न किया है। अनमेल विवाह के कारण स्त्री को किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है इसका सही रूप हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

अछूत समस्या :-

वर्ण व्यवस्था हिन्दू समाज में व्याप्त हैं। यह आज से नहीं पुरातन काल से चली आ रही हैं भक्तिकाल में कबीर और रैदास आदि संतों ने दलित के लिए निर्गुण भक्ति का मार्ग खोलकर वर्ण व्यवस्था को चुनौती दी। उनके दोहे 'जात पांत' पूछे न कोई, हरि को भजे सो हरि का होई, तो तू बामन-बमनी जाया आज बात हवै क्यों नहीं आया के माध्यम से अपनी अभियक्ति दी। व्यक्तियों के साथ जाति-व्यवस्था के आधार पर ही अछूत व्यवहार किया जाता है। इसाई मिशनरियों का ध्यान 11वीं शताब्दी में इस ओर

आकृष्ट हुआ। इसके बाद गांधी और डॉ. अम्बेडकर ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किए। आज के समाज में स्त्री और दलित जातियाँ विद्यमान है जो अछूत कहीं जाती है। फलस्वरूप सामाजिक एवं आर्थिक शोषण की शिकार होती है। समाज आज भी ऊँच-नीच के अनुक्रम पर टिका हुआ है और जब ये जातियाँ अपनी वैधता खोजने का प्रयास करती हैं तो शुद्धता के चलित सिद्धांतों द्वारा उसके हिस्से में आती है गुलामी। आज भी मनुवाद विभिन्न रूपों में जिन्दा है – शैक्षिक संस्थाओं, सार्वजनिक स्थलों पर स्त्री और दलित को अपमानित किया जाता है।

मैत्रेयी पुष्पा ने उपन्यास में इस समस्या को कतिपय (थोड़े से) पहलूओं द्वारा उद्घाटित किया है। अछूतों के प्रति इनके पात्रों ने घृणित नहीं सहानुभति पूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है। इस उपन्यास में भँवर के माध्यम से छुआछूत व अछूत व्यवस्था पर कठोर घात किया गया है। जैसे - "हाँ छोटी कौन का नारा गाँव में ही लगाते रहो, शहरों में तो सब धान सत्ताईस सरे के। कौन पूछता है कि तू पंडित है भंगी ? होटलों में एक मेज पर एक ही बर्तन में कंधे से कंधे भिड़ाकर खाते हैं। चरनसिंह बौहरे अलीगढ़ के 'जै भगवान' होटल में उसी तौलिया से हाथ-मुँह पोछे आए थे, जिससे मिस्सी भंगी आधा घंटा पहले पोछ गया था। मनोहर उतनी देर न बैठा रहता तो बौहरे को गंगाजल से नहने की कौन याद दिलाता ?....अजी गाँव में ही छुआछूत की लकीर पटी जा रही हैं।"[52]

मानवता का हनन आज के परिवेश में होता जा रहा है। व्यक्ति की जिंदगी से आंशिक अस्पृश्यता को महत्त्व दिया जाता है। कभी धर्म के नाम पर तो कभी मान्यताओं के नाम पर स्त्री-पुरुष यहाँ तक दलित जाति के बच्चे भी शोषण के शिकार होते हैं। इस उपन्यास में छुआछूत और असमानता के जहर को श्रीधर मास्टर अपनी तरक्की से काटना चाहता है। लेखिका ने भँवर की स्पष्टवादिता से लोगों को मिलनसार रहने का संदेश दिया है।

नारी समानता :-

नारी आज भी भारतीय समाज में शोषित पीड़ित एवं उत्पीड़ित वर्ग की श्रेणी में आती है। नारी को कभी विभिन्न उपमाओं से महिमा मंडित किया गया है "यत्र नार्थस्तु पुजन्यते' रमन्ते तत्र देवता, नारी बिना

कैसा परिवार, नारी तू नारायणी, नारी को दुर्गा, सरस्वती व लक्ष्मी के रूपों में शक्ति विद्या व धन के क्षेत्रों में अग्रणी व अनुकरणीय माना गया है और कभी उस पर दोष मंडित करके उस पर उंगली उठाई जाती है कभी उसे देवी बनाकर पूजा गया तो कभी पशु बनाकर अपमानित किया गया है लेकिन नारी का दर्जा कभी नहीं दिया गया।

नारी की स्थिति आजादी के इतने वर्ष बाद भी दयनीय ही है। पुरुष को नारी की तुलना में श्रेष्ठता प्रदान की जाती है। नारी पुरुष के असमानता का भेद उसके जन्म से शुरू होकर जीवन के अंत तक चलता रहता है। विधवा को नरकीय जीवन जीना पड़ता है। नारी को पारम्परिक मान्यताओं एवं सामाजिक कुरीतियों की मार सहनी पड़ती है। पितृसत्तात्मक समाज में इन सभी स्थितियों का कारण पुरुष सत्ता समाज है। मैत्रेयी पुष्पा ने इस समस्या को 'चाक' में मुखरित करने का प्रयास किया है। पितृसत्तात्मक समाज में नारी ही क्यों दंड की पात्र है पुरुष क्यों नहीं ? इसमें लेखिका ने नारी सामानता को शकुन्तला के माध्यम से दिखाई है – शकुन्तला गुरुकुल शास्त्री के साथ पकड़ी जाती है तब उसके पिता उसे अपनाने से इंकार कर देते हैं और कहते हैं कि मैं अपनी नाक काटने किसी कीमत पर नहीं ले जाऊँगा इसे, आज से यह मेरी बेटी नहीं आपकी खादिमा है। यह स्थिति पान्चन्न बीबी के साथ भी हुई जब वह मेहताबसिंह के साथ पकड़ी गयी तो पिता द्वारा दंड की पात्र बनी।

समाज में नारी और पुरुष के लिए अलग-अलग मापदंड स्थापित है। स्त्री एवं पुरुष के भेद को रंजीत के कथन से प्रकट किया गया है। लोग मर्द की भूल हो तो आई गई कर देते हैं क्योंकि वह दस दरवाजे झांकने के बाद भी धुला-पूंछा सा लौट आता है अपने घर। मगर औरत के अच्छे होने की निशानी ही केवल उसका चाल चलन है। गंदी नजर वाली औरत को लोग रंडी-वेश्या ही कहकर पुकारते हैं। अंध विश्वासों की बलि वेदी में पर भी स्त्री की बलि चढाई जाती है। इस उपन्यास में जब मनोहर की बंहू पर भूत का साया लग जाता है तो तब सारंग कहती है "इस गाँव के किसी मर्द को इस तरह मिर्चों के धुएं पर नहीं औन्धाया किसी ने।"[53]

इस प्रकार लेखिका ने नारी समानता के विभिन्न संदर्भों को इस उपन्यास में रेखांकित किया है।

3. ग. स्त्री की आर्थिक स्थिति

औद्योगीकरण के युग में अर्थ मानव जीवन को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक है । इसके फलस्वरूप नगरीकरण को बढ़ावा मिलता है । भारत की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती है । मुख्य व्यवसाय कृषि होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति कृषि पर आधारित होती है । आज अधिक उद्योग-धंधे शहरों की तरफ बढ़ने लगे हैं । वैयक्तिक और सामाजिक स्तर पर व्याप्त आर्थिक वैषम्य का एक प्रमुख कारण है, विशेषकर नारी जीवन के संदर्भ में । यह सत्य है कि हर कोई अपनी इच्छानुसार सफल जीवन जीना चाहता है तो उसके लिए आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना बहुत जरुरी है । अर्थ ही वह शक्ति है जिसके बल पर व्यक्ति अपना जीवन खुशहाल बना लेता है । नारियों के संदर्भ में प्रख्यात नारीवादी लेखिका साइमन द बोउवार अर्थ की स्वतंत्रता को ही सही स्वतंत्रता मानती है – "मतदान और अन्य तमाम नागरिक अधिकारों के बावजूद आर्थिक स्वतंत्रता सिर्फ अमूर्त और सैद्धांतिक रह जाती है ।"[54] समाज में औद्योगीकरण के कारण परिवर्तन आया है । हमारा समाज प्रचीनकाल से ही पुरुष अर्थव्यवस्था का कर्णधार माना जाता है । लेकिन समय के साथ मूल्यों में परिवर्तन आया है । इस कारण नर-नारी की आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में भी परिवर्तन हुआ है । समाज में नारी की दयनीय स्थिति का कारण उसे कई बाधाओं का सामना करना पड़ा, लेकिन नारी अपने आत्म-विश्वास से इन बाधाओं से सफलता प्राप्त की है ।

भारत में ऐसी कामकाजी स्त्रियाँ भी है जिन्होंने अपने क्षेत्र के बल पर समाज में विशिष्ट सफलता प्राप्त किया है । प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने कहा था "औरत मर्द के फर्क में पड़कर मैंने अपने आपको हमेशा इंसान सोचा है । शुरू से जानती थी मैं हर चीज में काबिल हूँ । कोई समस्या हो, मर्दों से ज्यादा अच्छी तरह सुलझा सकती हूँ । मैंने अपने औरत होने को कभी किसी कमी के पहलू से नहीं सोचा ।"[55] स्त्री ने कामकाजी दुनिया में कदम रखकर समाज में एक नया आयाम स्थापित किया है । राजी सेठ ने कहा है कि "आत्मनिर्भर होने पर सामाजिक स्तर पर उसकी भूमिका स्वतः बदल जाती है क्योंकि जो ढाँचा उसके पराधीन होने की वास्तविकता पर खड़ा है वह स्वतः ही ढह जाता है और वह उन मर्यादाओं को अपने लाँघ जाती है जो एक पराधीन मानसिकता के कारण पनपती रही है, यह अतिक्रमण की बड़े एहसास से

जुड़ने की जमीन है।"[56] यद्यपि कामकाजी स्त्री को दोहरी-तिहरी भूमिका निभानी पड़ती है। घर के दायित्व के साथ-साथ समाज की चुनौतियों का भी सामना करना पड़ता है और कई बार दोहरी भूमिका निभाते-निभाते दाम्पत्य जीवन में भी संकीर्णता एवं तनाव उत्पन्न होने लगता है। क्योंकि पुरुष कभी भी स्त्री की सफलता को आसानी से स्वीकार नहीं कर पाता। अर्थ पितृसत्ता के बंधन से मुक्ति पाने का कारगर उपाय है। आर्थिक संबलता के लिए पहला साहसिक कदम है जीवन में शिक्षा का महत्त्व को जानना।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में पारिवारिक बंधनों में जकड़ी हुई नारी का पारंपारिक मान्यताओं को छोड़कर आर्थिक स्वावलंबन स्वरूप का अंकन किया गया है। आज यंत्रीकरण का युग है और इसके कारण हर क्षेत्र में विकास संभव हो पाया है। शिक्षा एवं यातायात की सुविधाओं के कारण लोगों के विचारों का आदान-प्रदान अधिक संभव हो पाया है। यंत्रीकरण के कारण नवीन उद्योग-धंधों का जन्म हुआ इस कारण आर्थिक क्षेत्र में भी परिवर्तन हुए हैं फलस्वरूप जातिगत बंधन ढीले पड़ गए और लोगों में विस्तृत दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ आज व्यक्ति जाति से नहीं कार्य से उच्च माना जाता है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में जाति से अधिक श्रेणी को प्रमुखता दी है। आज भी ग्रामीण परिवेश में ऐसे व्यक्ति विद्यामान हैं जो अशिक्षित हैं और इसी कारण उनका दृष्टिकोण विस्तृत नहीं हो पाया है। अभी भी पुराने व्यक्ति जाति को महत्त्व देते हैं पद को नहीं। लेकिन जो शिक्षित व्यक्ति हैं उनकी सोच में परिवर्तन आया है भले ही वह ग्रामीण परिवेश में ही क्यों न रह रहे हो। यही स्थिति 'चाक' उपन्यास में लौंगसिरी बीबी एवं सारंग के कथोपकथन से व्यक्त हुई है। "क्यों री, उस मास्टर ने लत्ता उजले पहन लिए, तब क्या वह बाम्हन हो गया ? दादू कितने गुनी हैं, पर बैठते है धरती पर। नेंकसे मास्टर देखता था ? क्या कहता था ? जो बड़ा है तो पापी क्या जौ की जाति बड़ी हो जाएगी ? आजकल जाति-बिरादरी ! तू, भी बीबी पुराने समय की बात।"[57]

मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' उपन्यास में यह यक्त होता है कि जाति प्रथा ने अपनी असमानता के कारण अन्याय को जन्म दिया, परंतु वर्ग बोध की प्राथमिकता के कारण परम्परागत जाति के आधार भूत सिद्धांत डगमगाने लगे हैं। इन्होने अपने इस उपन्यास में ऐसी स्त्री को भी चित्रित किया है जो परिवार एवं समाज के रिश्तों के दाँव पर रखकर शिक्षा की ओर अग्रसर होती हैं। क्योंकि शिक्षा ही अर्थोपार्जन की दिशा में पहला कदम है। यद्यपि इस संघर्ष में उसे समाज की अवहेलना भी स्वीकार करना होता है एवं वैवाहिक संबंधों की

भी दाँव पर रखना होता है। स्त्री के मार्ग में सदैव पुरुष वर्ग बाधित रहा है। सारंग अपने पति से अलग स्वयं के व्यक्तित्व को स्थापित करने के लिए पति के विरुद्ध चुनाव में पर्चा दाखिल करती है फलस्वरूप उसके वैवाहिक संबंध डगमगाने लगते हैं। क्योंकि पुरुष में इतना साहस ही नहीं होता कि वह स्त्री की उन्नति को बर्दाश कर पाए और यही रंजीत के साथ भी होता है। परिणामस्वरूप सारंग को गद्दार पत्नी और छिनाल साली से संबोधित किया गया।

मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री एवं पुरुष को समान रूप से देखना चाहा। परंतु पुरुष का अहम सदैव आड़े आ गया। स्त्रियाँ अब खुद कमाने लगी है इस कारण अब तक जो स्त्रियाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पिछड़ती नजर आती थी वह अब अपने अधिकारों की मांग कर रही हैं एवं नयी ऊर्जा के साथ समाज के प्रत्येक क्षेत्रों में पुरुष की सहभागी दिखाई पड़ रही हैं । आर्थिक विपन्नता इतनी अधिक भयावह होती है कि निम्न स्तरीय व्यक्ति अपनी कन्या का सौदा कर देता है। यह प्रथा आज से नहीं बल्कि जमींदारी प्रथा के समय से चली आ रही है। इस उपन्यास में यह दिखाया गया है कि थानसिंह ने अपने बड़े भाई के लिए लड़की खरीदी थी – चालीस हजार में। इससे यह व्यक्त होता है कि इस समाज में स्त्रियों का सदैव शोषण ही हुआ है उन्हें हमेशा से वस्तु कि नजर से देखा गया है। मैत्रेयी पुष्पा ने इसका उल्लेख करते हुए लिखती है – "बिकने वाली चीजों में गया, बैल, भैंस, जेवर, अनाज और लड़कियाँ रही।"[58] औद्योगीकरण के फलस्वरूप पूँजीगत व्यवस्था समाप्त हो गयी है एवं निम्न वर्ग चेतना की ओर अग्रसर है। परंतु आज भी इसकी स्थिति अत्यंत दयनीय है। निम्न वर्ग दो वक्त की रोटी के लिए समाज की इस व्यवस्था से लड़ रहा है। इस कारण उसका जीवन दुख पीड़ा एवं कई यातनाओं से गुजरता है।

मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में समाज के निम्न वर्ग और नारी के यथार्थता की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने ग्रामीण एवं शहरी स्त्रियों की आर्थिक स्थिति का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है।

3. घ. स्त्री की पारिवारिक स्थिति

परिवार समाज का केंद्र होता है। मनुष्य की सामाजिक क्रियाएँ परिवार में ही होती है एवं उसका विकास परिवार से ही होता है इसलिए परिवार महत्त्वपूर्ण संस्था है। परिवार शब्द 'वृ' धातु से 'परि' उपसर्ग जिसका अर्थ 'घेरना' एवं 'घ' प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न है। जिस प्रकार राजा को सामंत व परिचारक घेरे रहते थे, वह जनता का पालन-पोषण करता था। बच्चे, स्त्री, पुरुष सब राजा पर आश्रित रहते थे उसी प्रकार घर में भी एक मुखिया या संचालनकर्ता होता है जिसके आश्रय में परिवार का पालन पोषण होता। फैमिली (family) परिवार का अंग्रेजी पर्याय है। "फैमिली शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द famulas से हुई है जिसका अर्थ होता है सेवक। मराठी, हिंदी, गुजराती और बांगला में परिवार शब्द के अर्थ का विकास भी फैमिली (family) शब्द के सदृश्य ही हुआ है ।"[59]

समाजशास्त्र ने पारिवार का अध्ययन ही नहीं किया है बल्कि दूसरे सामाजिक विज्ञानों ने भी अपनी अध्ययन में परिवार को सम्मिलित किया है। सर्वप्रथम ऐतिहासिक दृष्टि से परिवार, संस्कृति और सभ्यता का ऐसी दृष्टि है जिसके माध्यम से किसी काल विशेष में घटने वाली सामाजिक घटनाओं की कारक संबंधी व्याख्या की जा सकती है। वही मनोविज्ञान भी व्यक्ति का प्रथम रागात्मक एवं स्नेहात्मक पर्यावरण को परिवार के रूप में लेते हैं। जीवनशास्त्र ने अपने अध्ययन में परिवार को सम्मिलित करते हुए कहा है कि विवाह सम्बन्धी सामाजिक नियम जब विवाह के क्षेत्र को सीमित कर देते हैं तो ऐसे विवाहों से संतान पर जो प्रभाव पड़ता है वह जीवनशास्त्र का भविष्य बन जाता है। "अर्थशास्त्र में परिवार वहाँ परिवार उत्पादन और उपभोग की प्राथमिक इकाई है, राजनीति विज्ञान में परिवार सत्ता के नियमों का प्रतिपादन, हस्तांतरण एवं प्रभावशाली बनाने वाली एक मौलिक व सार्वभौमिक संस्था है । इस प्रकार इतिहास, मनोविज्ञान, नाट्यशास्त्र, जीवनशास्त्र, अर्थशास्त्र व राजनीतिक विज्ञान ने अपने ढंग से पारिवार की व्याख्या की है।"[60]

परिवार इतना सर्वव्यापी है कि इसे परिभाषा में बाँधना सहज नहीं है फिर भी विभिन्न विद्वानों ने इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है।

मेकाइवर व पेज के अनुसार – "परिवार पर्याप्त निश्चित यौन संबंध द्वारा परिभाषित एक ऐसा समूह है जो बच्चों की उत्पत्ति और पालन – पोषण की व्यवस्था करता है ।"[61](The family is a group defined by a son relation – ship sufficiently precise and enduring to provide four the procereation and upbringing of children)

बर्गेस एवं लॉक के अनुसार - "परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह कहा जा सकता है जो विवाह, रक्त अथवा गोद लेने के संबंधों द्वारा संगठित है, एक छोटी सी गृहस्थी का निर्माण करते हैं और पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन के रूप में परस्पर अन्तः क्रियाएँ करते हैं अथवा अपने-अपने सामाजिक कार्यों के रूप में एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं तथा एक सामान्य संस्कृति को बनाते हैं और रक्षा करते हैं ।"[62] (The family is a group of persons unted by the ties of marriage, blood adoption, constituting a single hours hold, interesting and inter communicating with each other in their respective social role of husband and wife, mother and father, training a common culture)

मुरडांक के अनुसार – "परिवार एक ऐसा सामाजिक समूह है जिसके लक्षण सामान्य निवास, आर्थिक सहयोग है । इसमें दो लिंगों के वयस्क शामिल हैं जिसमें कम से कम दो व्यक्तियों में स्वीकृत यौन संबंध होता है और जिन वयस्क व्यक्तियों में यौन-संबंध होते हैं उनके अपने या गोद लिए हुए एक या अधिक बच्चे होते हैं ।"[63]

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्वरुप सामने आता है कि पति-पत्नी के यौन संबंध द्वारा परिवार विकसित होता है । परिवार में ही बच्चों के पालन-पोषण से लेकर उसके विकास तक का सभी कार्य होता है । परिवार ही व्यक्ति की प्रथम पाठशाला होती है । सामाजिक व्यवहार व नैतिक आचरण की शिक्षा परिवार में रहकर ही प्राप्त होती हैं । परिवार का महत्त्वपूर्ण सहयोग सामाजिक अन्तः क्रियाओं में सहयोग देना है इस कारण पारस्परिक संबंध विकसित होते हैं ।

मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में बदलते पारिवारिक संबंध का चित्रण इस प्रकार किया है। पति – पत्नी संबंध, माता-पुत्री संबंध, माता-पुत्र संबंध, पिता-पुत्री संबंध, पिता-पुत्र संबंध, सास-बहू संबंध, पारिवारिक विघटन आदि, जिनकी चर्चा निम्नलिखित है –

पति-पत्नी संबंध:-

आज परिवार की महत्त्पूर्ण दाम्पत्य आधारशिला है। परिवार का निर्माण स्त्री व पुरुष के संबंध से ही होता है। भारतीय अवधारणा के अनुसार पति-पत्नी का रिश्ता जन्म-जन्मान्तर का माना जाता है, पुरुष के बिना स्त्री व स्त्री के बिना पुरुष को पूर्ण नहीं कहा जा सकता। इस अधूरेपन को पति-पत्नी पूर्ण करते हैं क्योंकि दोनों एक दूसरे के पूरक है। इसी कारण जीवन में दोनों की अत्यावश्यकता है। इसलिए कहा गया है "सहयोग जीवन का तत्त्व है, विरोध जीवन का दोष है। इसलिए दोष के ही विरोध का जीवन में स्थान है। इसलिए दोषों को विरोध और गुणों का सम्मलित करते हुए पूर्ण दशा को पहुचें, यही सृष्टि रचयिता का अभीष्ट है।"[64]

मैत्रेयी पुष्पा ने पति-पत्नी के पारिवारिक संबंध को अत्यंत सूक्ष्मता के साथ व्यक्त किया है। पति-पत्नी का संबंध रथ के दो पहियों के समान है, यदि एक भी पहिया टूट जाता है तो रथ चल नहीं पाता। आज स्त्री को समानता के अधिकार प्राप्त है परन्तु फिर भी समाज में पत्नी का दर्जा अत्यंत निम्न है। 'चाक' उपन्यास में रंजीत अपनी पत्नी सारंग की बहन रेशमा की हत्या के न्याय के लिए उसका साथ देने में असामान्यता महसूस करता है और कोई दूसरा पुरुष जब उसकी ताकत बनता है तब दाम्पत्य जीवन के कहल उत्पन्न हो जाती है। मैत्रेयी पुष्पा की नारियाँ भारतीय ग्रामीण परिवेश का प्रतिनिधित्त्व करती हैं। लेखिका ने नारी की एक नई परिभाषा गढ़ी है। इन्होने गृहणी के दोनों रूपों को दिखया है जहाँ एक ओर उसके अच्छे, उदार, पतिपरायण और पति का मुँह जोहने वाली स्त्रियों का चित्रण है, तो वहीं दूसरी ओर वह स्त्रियाँ है जो अपने सुखों के लिए किसी से भीख नहीं मांगती। वह अपनी इच्छाओं और सुखों की पूर्ति अपने तरीके से करती हैं।

अतः कहा जा सकता है कि पति-पत्नी का रिश्ता प्रेम, आपसी समझबुझ एवं सहयोग से ही सफलता की ओर अग्रसर होता है। मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में दाम्पत्य जीवन के सभी पक्षों का वास्तविक चित्रण करने का प्रयास किया है।

माता-पुत्री संबंध :-

माता का विशेष लगाव अपने संतान के प्रति होती है अंतर तब आता है जब संतान पुत्र हो अथवा पुत्री। बेटे को हमेशा घर का चिराग माना गया है और बेटी को पराई अमानत। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में माता के शाश्वत रूप के सभी पक्षों का विस्तार से वर्णन किया है। संतान चाहे योग्य हो, कर्त्तव्य च्युत (नष्ट-भ्रष्ट) हो, परंतु माँ का वात्सल्य भरा आंचल सदा उसपर छाया रहता है। मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में ऐसी माँ का चित्रण किया है जो अपनी बेटी की ख़ुशी के लिए समाज द्वारा निर्धारित नियमों का विरोध करती है। यद्यपि जात-बिरादरी का विरोध करने की क्षमता बहुत कम व्यक्तियों में होती है। परंतु इस उपन्यास में गुलकंदी की माँ हरिप्यारी ने इस को उठाया और स्वयं गुलकंदी को वर खोज लाने के लिए मेले में भेज दिया। माँ का अपनी पुत्री के प्रति वात्सल्य एवं समाज के नियमों का चित्रण इस कथन से परिलक्षित होता है। "मेरी बेटी है वह। आदमी, डाकू चोर औलाद को नहीं त्यागता पर अब जात-बिरादरी और घर गाँव---मुझे चैन से जीना नसीब न होगा।"[65] माँ ही सृजन का दूसरा नाम है। माँ ही व्यक्ति का पहला गुरु होती है वह जीवन भर उसके भविष्य के लिए चिंतित रहती है। माँ अपने भोलेपन के कारण माँ नहीं होती। गुरु की तरह रास्ते पर ढालने के लिए माँ होती है।

मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में माँ की परम्परागत व रूढ़ एवं आधुनिक व हितैषी (मित्र, दोस्त) दोनों ही प्रकार की छवियों का चित्रण करते हुए माता-पुत्री के संबंध को दर्शया है।

माता-पुत्र संबंध :-

भारतीय समाज में दिग्दर्शित है कि माँ का अपने पुत्र के प्रति विशेष लगाव होता है। कोई भी स्त्री जब माँ बनती है तो जीवन के सभी सुख वह अपने पुत्र को देना चाहती है। उसकी माता का ही अपने पुत्र पर सबसे अधिक अधिकार होता है। मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में माता एवं पुत्र के संबंध एवं माता के स्थान को

महत्त्व दिया है। "यही प्रताड़ना देखकर तुम्हारे बीच से कोई मंझा उठेगी सारंग, जो अपनी मर्जी से अपना बच्चा पैदा करेगी। भले बालक वही सबिरे (जंगल) में जन्में। उसकी कोख का फैसला करने वाला कोई राजा होगा न मालिक और न कोई देवता। नल की तरह जन्म लेने वाला प्यारा सा बच्चा सिर्फ अपनी माँ को पहचानेगा, किसी राजा पिरथम को नहीं।"[66] सारंग अपने पुत्र से ही अपना अस्तित्व मानती है इसलिए इस घर को अपना मानती है। वह कहती है -"मैं किसी के गिराए नहीं गिरूँगी। मेरा अपना है – मेरा चन्दन। मेरा बेटा। उसको बुलाना होगा। उसके आने से ही यह घर कई गुना मेरा हो जाएगा। चंदन मेरी फुनगी नहीं, जड़ है। बसावट है। दुनिया है सृष्टि है।"[67]

मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में ऐसी माता का चित्रण किया है जिसने अपने पुत्र को ही अपनी शक्ति मान कर थोथी मान-मर्यादाओं का खंडन किया है।

पिता-पुत्री संबंध :-

पिता की भूमिका परिवार में मुख्य होती है। पिता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह संतान के पालन-पोषण में कोई भी भेदभाव न करे। भले ही वह पुत्री हो या पुत्र। लेकिन सदियों से ही पुत्रियों के पालन-पोषण, शिक्षा को लेकर दोगला व्यवहार किया जाता है। समाज ने लड़के एवं लड़कियों के कार्य निर्णय पहले से ही किया है कि लड़की घर गृहस्थी का कार्य संभाले और लड़के बाहर का। मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में पिता-पुत्री का संबंध कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि जब कोई पुत्री अपने पिता की प्रतिष्ठा में आँच लगाती है तो ऐसी विस्फोटक स्थिति में पिता-पुत्री पारम्परिक संबंध में अलगाव उत्पन्नं हो जाता है। एवं स्नेह और सम्मान का रिश्ता खत्म हो जाता है। 'चाक' उपन्यास में गुरुकुल में शास्त्री के साथ पकड़ी गई लड़की के पिता ने उसे अपनाने से मना कर दिया। पिता के वज्रपात पूर्ण शब्द का दिग्दर्शन इस कथन से होता है "मैं अपनी नाक काटने किसी कीमत पर घर नहीं ले जाऊँगा इसे। आज से यह मेरी बेटी नहीं, आपकी खादिमा है।"[68] इसके एक कदम आगे पान्चन्न बीबी के पिता आते हैं जब उन्हें पता चलता है कि उनकी पुत्री का मेहताबसिंह के साथ संबंध है तो वह नथिया भंगिन को बुलाकर ऐसी सजा निर्धारित करते हैं जो एक जल्लाद ही दे सकता है।

मैत्रेयी पुष्पा ने यथार्थता की पृष्ठभूमि पर पिता-पुत्री संबंध का दिग्दर्शन कराया है। साथ ही समाज को यह सन्देश भी दिया है कि पुत्री परिवार की अत्यावश्यक कड़ी है।

पिता-पुत्र का संबंध :-

भारतीय समाज की अवधारणा है कि पिता के वंश को जीवित रखने वाला पुत्र ही होता है। माना जाता है कि पिता जो संस्कार अपने पुत्र को देता है वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला आता है। माता-पिता का पुत्र वृद्धावस्था में सहारा माना जाता है इसलिए पिता की संपत्ति एवं क्रियाकर्म का अधिकार पुत्र को दिया जाता है। हिन्दू संस्कृति में पुत्र को पूर्णता का आधार माना जाता है। "हिन्दू संस्कृति में पुत्र प्राप्ति के द्वारा पिता बनना एक बहुत काम्य माना गया है, क्योंकि इसी में जीवन की सफलता एवं पूर्णता है।"[69] पुत्र के जन्म से ही पिता को अपने पुत्र से यह अपेक्षा रहती है कि वह जब बड़ा होगा तब उसका सहायक बनेगा एवं पुत्र भी यही चाहता है कि वह अपने पिता को आर्थिक सहायता व मानिसक संतोष प्रदान करें। जब आर्थिक दृष्टि से पुत्र आत्मनिर्भर हो जाता है तब पिता की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता लेकिन जब ऐसा नहीं होता तो पुत्र स्नेह के आगे अमानवीय कार्य करने से भी वह नहीं चूकता है।

'चाक' उपन्यास में पुत्र-स्नेह में पिता लोकमर्यादा को भी छोड़ देता है साध जी अपने बेटों द्वारा किये गए अधर्म को पाक साबित करने के लिए तर्क करता है एवं दोषी होने पर भी अपने पुत्रों को सजा नहीं दिलाना चाहता। साधू जी की विवशता पुत्र स्नेह के कथन से चित्रित होता है - "भाई कौन सा बाप अपने बेटे को जेल में सड़ने देता ? रिहाई हमने कराई हमने। और क्यों ना करते ? बताओ तो ?"[70] इसके विपरीत गजाधर सिंह अपने पुत्र के अकृत्य कार्य में साथ नहीं देते जब उनका पुत्र रंजीत पन्ना सिंह की गर्दन दोबोचता है तो गजाधरसिंह अपने पुत्र की ओर निशाना साधकर बोले "छोड़ पन्ना को ! यह मत सोचना कि मैं तेरा बाप हूँ। रंजीत इस गजाधर ने पलटन में रहकर अपनों को भी मारा है। मेरे लिए मरना-मारना हत्या-कत्ल नहीं धमर है।"[71]

इस प्रकार मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में पिता-पुत्र संबंध में तनाव एवं प्रेम दोनों का दिग्दर्शन कराया है।

सास-बहू संबंध :-

परिवार के सुख शान्ति का दायित्व किसी एक व्यक्ति पर निर्भर नहीं रहता अपितु सभी सदस्यों की इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। लड़की के विवाह के उपरान्त सास की भूमिका अदा करती है। यद्यपि इस संबंध को सकारात्मक दृष्टिकोण कभी प्राप्त नहीं हुआ। मैत्रेयी पुष्पा ने सास-बहू की रूढ़ एवं मैत्री पूर्ण दोनों छवियों को इस उपन्यास में रेखांकित किया है। उन्होंने दर्शया है कि पितृसत्तात्मक समाज में नारी आज भी विवश है। हुक्मकौर अपनी बहू के सामने लाचारी व्यक्त करते हुए कहती है "रेममियां मेरा वश चले तो मैं तुझे अपनी पलकों में छिपा लूँ, पर मर्दों को क्या जवाब दूंगी री।"[72] यह सास-बहू के संबंध में वात्सल्य एवं प्रेम का संगम। कभी कभी ऐसे संबंधों में आपसी टकराहट, तनाव द्वेष की स्थिति की अभिव्यक्ति भी देखने को मिलती है। इस उपन्यास में रेशम अपने पति की मृत्यु के बाद गर्भधारण करती है वो यही बात सास-बहू के मन में तनाव उत्पन्न करती है। हुक्मकौर की नियत इस हद तक बढ़ जाती है कि वह अपनी बहू के गर्भ को गिराने के लिए काढ़ा तैयार करवाती है। रेशम की मृत्यु के बाद भी हुक्मकौर की नियत खत्म नहीं होती, वह अपने पुत्रों के पक्षों में खड़े होकर रेशम को कलंकिनी घोषित करती है । सास-बहू के संबंध में वात्सल्य के साथ-साथ श्रद्धाभाव भी अत्यावश्यक है। इस रिश्ते का निर्वाह तभी संभव है, जब दोनों एक दूसरे की भावनाओं का सम्मान करे। मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में सास-बहू के संबंध में वात्सल्य एवं प्रेम तथा टकराहट दोनों स्थितियों को दिखाया है।

ससुर-बहू संबंध :-

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यास में ससुर बहू को सूक्ष्मता से विश्लेषित किया है। हमारे चारों ओर सम्बन्धों का ताना-बाना है और मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण इनसे जुदा है। व्यक्ति को कुछ संबंध जन्म के साथ मिलते हैं और कुछ विवाह के बाद। यद्यपि यह संबंध खून नहीं है लेकिन इसमें पारस्परिक सौहार्द की भावना होती है। बहू भी संबंध की गरिमा हेतु ससुराल में पूर्ण रूप से समर्पित होती है।

'चाक' उपन्यास में गजाधरसिंह के अन्याय के लिए समाज उठा है। जब डोरिया सारंग के साथ क्रूर व्यवहार करता है तब अपनी पुत्रवधू के मान-सम्मान पर हुए आघात के लिए वह भरी सभा में साधजी से कहते हैं -"हम साले भीष्म पितामह नहीं है कि द्रौपती को, भरी सभा में नागी होती देख लें वे देवता थे, देख लेते होंगे। हम देखते नहीं ----।"[73] और यहाँ तक ही नहीं गजाधरसिंह अपने पुत्र को संकुचित व्यवहार को लताड़ते हुए अपनी पुत्रवधु के खुले व्यवहार का समर्थन करते हैं। ससुर-बहू का संबंध सम्बन्धों की निष्ठां एवं श्रद्धा का दूसरा नाम है। मैत्रेयी पुष्पा ने 'चाक' उपन्यास में इसे उजागर करने का प्रयास किया है।

पारिवारिक विघटन :-

परिवार ही समाज का मुख्य आधार है। पारिवार में ही सामाजिक और पारिवारिक संबंध विकसित होते हैं। पारिवारिक विघटन का अर्थ है परिवार का संगठन टूट जाना। परिवार के सदस्यों के बीच जो स्नेह, प्रेम, सहयोग और सद्भवाना रहती है, जिन वस्तुओं के सहारे परिवार एक इकाई के रूप में बंधा रहता है, उन तत्वों का टूट जाना ही पारिवारिक विघटन है। इसी संदर्भ में 'राजेन्द्र यादव' ने लिखा है "परिवार और परिवेश के सम्बन्धों के नाम भले ही वही रहे हो लेकिन भीतर वही नहीं रह गया था जो रूढ़ अर्थों में हुआ करता था। इस नई स्थिति और वास्तविकता को व्यक्त करने वाले नाम हमारे पास नहीं है। इसलिए सहारा तो उन्ही पुराने नामों का लेना पड़ता है।"[74]

पारिवारिक विघटन से पारिवारिक सम्बन्धों में तनाव बनता है और जब तनाव चरमोत्कर्ष पर पँहुच जाता है तो तलाक कि स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मद्यपान मानसिकता विकार, निर्दयता परित्याग दोष, व्यक्तिगत दोष आदि वैवाहिक सम्बन्धों व पारिवारिक संबंध में विच्छेद उत्पन्न करते हैं। आज के परिवेश में पारिवारिक संबंध टूटते जा रहें है, नैतिकता का हनन होता जा रहा है, रिश्ते-नातों से अधिक धन को महत्त्व दिया जाता है और आज का जो युवा वर्ग है वे कृषि के बजाय नौकरी करना पसंद करता है और ग्रामीण परिवेश उसके साधन सम्पन्न नहीं रहे है फलस्वरूप व्यक्ति धन कमाने के लिए शहर जाता है और वही का होकर रह जाता है। व्यक्ति धीरे-धीरे शहर की सुविधाओं का आदि हो जाता है एवं परिवार से विलग हो जाता है।

इस उपन्यास में भवानीदास के पुत्र हरिनिवास की पत्नी सीमा पढ़ी-लिखी व शहर की रहने वाली है। यथा-"गाँव से उसको बैर भी नही। मर्जी ऐसी की होली-दिवाली पर आने का भी दिल नहीं करता। गिनकर तिन बार आई है पूरे पाँच वर्ष में।---पिछली बार ही आई थी तो मच्छरों ने उसका यह हाल कर दिया था, काटे की जगह घाव बन गए और उसे एंटी बायटिक खाना पड़ा।"[75]

त्रिकोणात्मक प्रेम दाम्पत्य जीवन की छिन्न-भिन्न कर देता है। 'चाक' में रंजीत की उदासीनता के करण सारंग श्रीधर के निकट आती है एवं उससे प्रेम करने लगती है, इस अवैध प्रेम से सारंग एवं रंजीत के संबंध में कटुता उत्पन्न होने लगती है। दाम्पत्य जीवन का मुख्य आधार विश्वास है। जब अविश्वास उत्पन्न होता है तब तनाव उत्पन्न होता है जो विघटन की कगार तक पँहुच जाता है। नारी का घर से बाहर निकलना पुरुष के अहम को प्रभावित करता है। रंजीत के माध्यम से लेखिका ने पुरुष की मानसिकता को व्यक्त किया है। यथा- "औरतों जैसे आचरण करो। अपनी सीमाएँ देखो-गहने-कपड़े मांगो। पीहर-प्यौसार जाने के लिए लड़ों, रूठो, सच में तुम्हारी इस हर तरह की हर एकबात पर नछावर हो जाऊँगा। तुमको कंचन की तरह अपने घर की हदों में सुरक्षित रखने वाला मैं, चौखट के बाहर का खतरानाक दायरा कैसे नापने दूँ।"[76] सारंग पति के प्रतिद्वंदी के रूप में पर्चा भर्ती है तब रंजीत अपनी सहनशक्ति के बाहर हो जाता है और उनका संबंध विघटित होने के कगार पर पँहुच जाता है।

अन्तत: कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा ने अपने नारी पात्रों के माध्यम से पितृसत्तात्मक समाज पर कुठाराघात किया एवं अपराध में पुरुष समाज को दोषी करार दिया है। आज समाज में नारी हर परिपेक्ष में आगे बढ़ती हुई दिखाई दे रही हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में नारी की मनोबल को दिखाया है। लेखिका एक ऐसे समाज की कामना करती है जिसमें स्त्री एवं पुरुष दोनों को समान रूप में देखा जाना चाहिए। जिसमें न पुरुष का पौरुष का अहम हो और न ही स्त्री को दीनता बोध और यह तभी सम्भव हो सकता है जब नारी आत्मनिर्भर हो। मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में स्त्री के सभी पहलूओं को चित्रित किया है एवं बदलते पारिवारिक संबंध एवं पारिवारिक विघटन के कारकों को प्रामाणिक दृश्यों में अभिव्यक्त किया है।

संदर्भ :-

1. चाक, मैत्रीय पुष्पा, पृ.8
2. चाक, मैत्रीय पुष्पा, पृ.16
3. चाक, मैत्रीय पुष्पा, पृ.412
4. गोमा हँसती है, फ्लौप से, राजेन्द्र यादव, पृ.8
5. लक्ष्मण रेखा की चुनौतियाँ, सुनो मालिक सुनो, मैत्रयी पुष्पा, पृ.217
6. चाक, मैत्रीय पुष्पा, पृ. 66
7. चाक, मैत्रीय पुष्पा, पृ. 46
8. चाक, मैत्रीय पुष्पा, पृ. 225
9. चाक, मैत्रीय पुष्पा, पृ. 140
10. महिला उपन्यासकार, डॉ. मधु संधु, पृ. 116
11. चाक, मैत्रीय पुष्पा, पृ. 17
12. चाक, मैत्रीय पुष्पा, पृ. 19
13. चाक, मैत्रीय पुष्पा, पृ. 21
14. लक्ष्मण रेखा की चुनौतियाँ, सुनो मालिक सुनो, मैत्रयी पुष्पा, पृ.219
15. नारी रचना संसार के पुरुष पात्र,स्त्री मुक्ति का सपना में संकलित, शशिकला राय, पृ. 492
16. चाक, मैत्रीय पुष्पा, पृ. 345
17. चाक, मैत्रीय पुष्पा, पृ. 183

18. चाक, मैत्रीय पुष्पा, पृ. 243

19. चाक, मैत्रेयी पुष्पा पृ.115

20. चाक, मैत्रेयी पुष्पा पृ.19

21. चाक, मैत्रेयी पुष्पा पृ.22

22. चाक, मैत्रेयी पुष्पा पृ.19

23. चाक, मैत्रेयी पुष्पा पृ. 325 – 26

24. चाक, मैत्रेयी पुष्पा पृ. 325 – 26

25. चाक, मैत्रेयी पुष्पा पृ. 329

26. सामाजिक विमर्श के आईने में 'चाक' विजय बहादुर सिंह, पृ. 7

27. मैत्रेयी पुष्पा तथ्य और सत्य, मधुरेश, पृ. 6

28. चाक, मैत्रेयी पुष्पा,भूमिका, पृ. 5

29. सामाजिक विमर्श के आईने में 'चाक', विजय बहादुर सिंह, पृ.17

30. चाक, फ्लौप पर पीछे, मैनेजर पाण्डेय, पृ.108

31. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 10-11

32. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 13-14

33. स्त्री पुरुष: कुछ पुनर्विचार, सं. राजकिशोर, पृ.143

34. हंस, लेख-कथा और नारी संदर्भ', डॉ. निर्मला जैन, जुलाई 1994, पृ. 40,

35. समग्र कहानियाँ: अब तक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 386

36. चाक, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 412

37. सुनो मालिक सुनो, लक्ष्मण रेखा की चुनौतियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 212

38. सुनो मालिक सुनो, लक्ष्मण रेखा की चुनौतियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 214

39. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 262

40. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 210

41. महिला उपन्यासकार, डॉ. मधु-संधु, पृ. 116

42. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 19-20

43. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 43

44. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 117

45. संक्षेपित हिंदी शब्द सागर, सं. रामचन्द्र शर्मा, पृ. 470

46. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 248

47. चाक, चाक, पृ. 391

48. मधुमती, हमारे समय के स्त्री विमर्श का यथार्थ, डॉ. सूरज पीलावाला, अप्रैल – मई, 2004, पृ. 11

49. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 11

50. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 70

51. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 212

52. (मैत्रयी पुष्पा, चाक, पृ. 225

53. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 19

54. द सेकंड सेक्स, सिमोन द बोउवार, हिंदी अनु, स्त्री उपेक्षित, प्रभा खेतान, पृ.354

55. नारी अस्मिता हिंदी उपन्यासों में, सुदेश बत्रा, पृ. 7

56. हंस, स्त्री सृजन और अस्मिता बोध, राजी सेठ, मार्च 2000, पृ. 32

57. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 132

58. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 172

59. लेखिकाओं के नवें दशक की हिंदी कहानियों में पारिवारिक संबंध, डॉ. मालती आदावानी, पृ. 18

60. श्रमजीवी महिलाएँ और समकालीन पारिवारिक संगठन, डॉ. दुर्गा परमार, पृ. 12-14

61. Society an introductory analyses, Maciver and page, p, 238

62. The family from institution to companionship, Burgess and Leke. P, 8

63. भारतीय समाज, वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा, पृ. 220

64. बदलते संदर्भ और साहित्यकार, हरिभाऊ उपाध्याय, पृ. 114

65. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 256

66. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 214

67. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 154

68. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 91

69. प्रताप नारायण श्रीवास्तव के उपन्यास का समाजशास्त्री अध्ययन, डॉ. उर्मिला गम्भीर, ,पृ.88

70. चाक, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 78-79

71. चाक, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 327

72. चाक, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 21

73. चाक, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 48

74. लेखिका की नवें दशक की हिंदी कहानियों में पारिवारिक संबंध, डॉ मालती आडवानी, पृ. 111

75. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 52

76. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 374

चतुर्थ अध्याय

चाक में चित्रित स्त्री एवं मैत्रेयी पुष्पा की रचना-दृष्टि

4. क. स्त्री की वेदना

भारत को विश्व में एक बहुत प्राचीन सभ्यता के रूप में जाना जाता है, परन्तु यह हमारा दुर्भाग्य रहा है कि हमारे समाज में स्त्री को पुरुष की बराबरी का दर्जा हासिल नहीं हुआ है। अपने तमाम सुधारों के बाद भी भारत कन्या भ्रूण हत्या के मामले में सब से आगे है। इस दौर की यह विड़म्बना है कि जो राज्य जितना अधिक विकसित हुआ है, उस राज्य में कन्या भ्रूण हत्या भी उतनी ही तेजी से बड़ी है। पुरुष सदियों से ही स्त्री के ऊपर अपना अधिकार जताता आया है, चाहे वह संपत्ति के बल पर हो या धर्म के बल पर। स्त्री को तथाकथित शास्त्रानुमोदित रूप में देवी है, पूज्या है, वंदनीय है आदि नाम से पुकारा जाता है जबकि समाजानुमोदित रूप में स्त्री हाड़-मांस की एक ऐसी रचना है, जो जीवित होने के बाद भी न जीवंत है, न स्वाधीन। शास्त्र पर आधारित धारणाएँ भी स्त्री के लिए आपस में बहुत उलझी हुई हैं। पता ही नहीं चलता कि उसके देवी होने की सीमा कहाँ से शुरू होती है और कहाँ उसके देवी रूप को परम्परागत सामाजिक दृष्टिकोण तोड़ना शुरू कर देता है और उसे सामान्य मानव भी नहीं रहने देता है। विड़म्बना तो यह है कि देवी और पूजनीय के रुप में भी वह ऐसी विशेषताओं से गढ़ी जाती है, जो सिर्फ पत्थरों में संभव है। उसका बोलना भी वर्जित है और इधर-उधर हरकत करना भी। वह हाथ उठाए आशीर्वाद दे सकती है, लेकिन निहित स्वार्थी वेदज्ञ और देवज्ञ के अनुसार भाषा रचकर उसके मुँह में स्थापित कर देते हैं और आवश्यकता हो तो उसके बहुत सारे हाथ लगा देते हैं और हर हाथ में वे चीजें सुशोभित कर देते हैं , जो समय आने पर केवल उन्हीं के काम आ सकती है। इनमें कहीं भी न देवी की इच्छा है, न निर्णय। जहाँ वह देवी से इतर गढ़ी जाती है, वहाँ उसमें मात्र गतानुगतिकताहै, ब्राह्मण संस्कृति द्वारा निर्मित पुरुष वर्चस्व का मौन समर्थन तथा अनुपालन है और चुपचाप एक ऐसे रास्ते पर चलते चले जाने की विवशता है, जो हर अंधी सुरंग की ओर बढ़ता है। समाज में स्त्री की स्वतंत्र सत्ता या अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती। उसके अपने साकार रूप को समाज स्वीकार ही नहीं कर सकता। उसको जीवन भर किसी न

किसी रिश्ते या बंधन के आवरण तले ही जीना पड़ता है। यह मान लिया गया है कि स्त्री अकेले जीने में समर्थ नहीं है। इस कारण समाज में स्त्री की स्थिति हमेशा दयनीय ही रही है। किसी-न-किसी की छत्रछाया में रहना उसकी नियति है। बचपन से ही इस स्थिति में रहने की आदी होने के कारण जब कभी उसके साथ अन्याय होता है तो उसकी अपेक्षा रहती है कि इसका प्रतिकार वे लोग करें, जिनके संरक्षण में स्त्री रहती है। ऐसा न होने पर स्त्री व्याकुल हो उठती है। संस्कारशीलता, सहिष्णुता और शालीनता ही स्त्री होने की पहचान बना दी गई है। इन सीमाओं ने उसे हमेशा से असहाय, संकुचित और विवश बनाया है।

मैत्रेयी पुष्पा अपने उपन्यास 'चाक' में भारतीय स्त्री के जीवन की आंतरिक पीड़ा, घृणा और गुस्से को प्रभावशाली ढंग से सामने लाती हैं। दरअसल भारतीय समाज में लाचारी और बेबसी से कोई हल नहीं निकल सकता। इसलिए 'चाक' की पात्र सारंग खुद ठानती है कि डोरिया को पहलवान कैलासी से पिटवायेगी। भारतीय समाज में स्त्री को पुरुष की तरह पूर्ण व्यक्ति की प्रतिष्ठा मिले इसके लिए स्त्री को देह की स्वतंत्रता चाहिए और 'चाक' में पहली बार लेखिका ने निर्द्वंद होकर कैलासी और कलावती चाची के संबंध के माध्यम से इसे दिखाया है। हमारे समाज की यह बड़ी विड़म्बना है कि स्त्री देह की सीमा पुरुष द्वारा निर्धारित की गई और इसके लिए बकायदा एक धार्मिक ढाँचा भी खड़ा किया गया, जो देह के स्वामित्व के मामले में केवल स्त्री के विषय में निर्णय देता था। इसका परिणाम यह निकला कि अब पुरुष उसका स्वामी था तथा अन्य किसी व्यक्ति से दैहिक संपर्क वर्जित था। विजय लक्ष्मी ने 'चाक' उपन्यास में वर्णित स्त्री वेदना के संबंध में लिखा है – "भारतीय समाज का यथार्थ यह बताता है कि उसने स्त्री को और उसके भीतर की आग को न केवल दबाने, बल्कि पूरी तरह बुझाने की निरंतर चेष्टा की है। जब विचार और भावना से वह उसे नहीं दबा पाया, तो उसने परम्पराओं और व्यवस्थाओं के सहारे उसको दैहिक दृष्टि से पराजयबोध कर शिकार बनाया। यही कारण है कि जो स्त्री पहले दबे-छिपे नैतिक दैहिकता की सीमाएँ तोड़ती थी और कुंठाओं का शिकार होती थी, वह स्वतंत्रता बोध के जगने पर दैहिक नैतिकता से मुक्ति के लिए छटपटाई। आज यह कहना बहुत अस्वाभाविक नहीं लगता कि सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिस्थिति के चलते स्त्री की मुक्ति की कामना पहले पहल दैहिक मूल्यों से जुड़ कर विकसित हुई।"[1]

समाज में स्त्री की स्वतंत्र सत्ता या अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। स्त्री स्वातंत्र्य का एक हिस्सा प्रेम भी है। मैत्रेयी पुष्पा अपने उपन्यासों में प्रेम का महत्त्व प्रस्तुत करती हैं। हालाँकि समाज में प्रेम वो नहीं रह गया है जिसे कभी घनानंद ने 'अति सुधो स्नेह को मारग' कहा था। आज प्रेम आवश्यकताओं और जरूरतों के अनुसार होता है। वर्तमान समय में प्रेम शोषण का भी औजार बन गया है। इनके उपन्यासों में एक ओर उस प्रेम का चित्रण मिलता है, जो मानव को लौकिक धरातल से ऊपर उठाकर आंनद लोक में पहुँचा देता है, साथ ही प्रेम के पीछे छिपे कपट को व्यक्त करने वाले संदर्भ भी मिलते हैं।

प्राचीन काल से ही स्त्री पुरुष संबंध कई प्रकार की जटिलताओं, रहस्यों और वर्जनाओं से अवगुंठित रहे हैं। प्रेम और यौन संबंध अपनी सर्वव्यापकता और अनिवार्यता के बावजूद अत्यधिक वर्जनाओं के शिकार रहे हैं। इन पर अश्लीलता, मर्यादाहीनता, चरित्रहीनता आदि के इतने भारी अभियोग लगाये जाते हैं कि इसके वास्तविक रूप की हम कल्पना भी नहीं कर पाते। मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री-पुरुष संबंधों को एक नई भूमि पर उतारने का प्रयास किया है। 'चाक' में सारंग और श्रीधर के प्रेम और यौन संबंध एक नितांत अपचारित मार्ग की ओर संकेत करते हैं। श्रीधर की घायल टूटती देह और घोर निराशा में डूबते मन को सारंग अपने प्रेम से जीवित कर देना चाहती थी। इस संबंध की रहस्यात्मकता को वह पूरी तरह नहीं खोल पाती है। सारंग सोचती है – "क्या बताऊं किसी को कि क्या हुआ था ? मुझे ये लोग क्या समझ पाएँगे.... मैं ही नहीं जान पा रही कि जो कुछ हुआ, वह उसकी भरपाई थी या मेरी अपनी अधूरी-पूरी इच्छा? दबी-घुटी लालसा या वर्जित फल को चखने जाँचने की जिद ? मेरा ही फैसला था कही आजाद होकर सोच रही थी अपने बारे में। मास्टर ने तो यह भी सोचा होगा कि सारंग ने बाँध लिया अब मुझे। चंदन के कारण श्रीधर को बाँधना चाहती रही हूँ मैं ? या अकेली ही चलकर ताकत इकट्ठा कर रही हूँ ? देखना चाहती हूँ कि कहाँ-कहाँ से गुजर जाऊँगी ? मालूम नहीं श्रीधर के संग एक हो जाने का कौन सा कारण था।"[2]

स्वातंत्र्योत्तर भारत में भी हमारा पुरुष प्रधान समाज अपनी सामन्ती वर्चस्व वाली प्रवृत्तियों से छुटकारा नहीं पा सकता है। जिसका प्रमाण 'चाक' उपन्यास का परिवेश है। एक ओर सारंग का ससुर

उसके काम की, व्यवहार और पढ़ाई की प्रशंसा करता है। प्रसंगानुरूप वर्णन है कि "जिस दिन ब्याहकर आई थी, रंजीत सहित उनके भाई और पिता का सीना गज-गज चौड़ा हो गया था। ऐसी बहू, जो संस्कृत के शुद्ध श्लोक बोले, अर्थ करे, बनियों के घर में भी नहीं आई। इतनी लिकायत से रहनेवाली सारंग ! बाबा घर को देख-देखकर सिहाते। विद्वान बहू हर बात की ऊँच-नीच, संभाल-सुधार जानती है – सबसे कहते। गृहस्थ तप है। हमारी सारंग बड़ी समझदारी से काम लेती है।"[3] सच बात यह है कि प्रत्येक मनुष्य पर "तारीफ का नशा सर चढ़कर बोलता है। सारंग गृहिणी का फर्ज निभाती हुई तारीफें लूटती रही। ज्यादा से ज्यादा बंधनों में जकड़ती गई। भूलने लगी गुरुकुल में पढ़ी विद्या। रहन-सहन, भाषा-बोली, पढ़ने-लिखने की आदत बीते जमाने की बात हो गई।"[4]

कहानी यह है कि कभी सारंग के ससुर ने अपनी पत्नी को शक व भ्रमवश मार डाला था। आखिरकार कोई मर्द अपनी बीबी की आशनाई को क्यों बर्दाश्त करें चाहे वह शक ही क्यों न हो। अतः वह बहू की तरफदारी करता है वंश विकास या प्रायश्चित की भावना से। पर उसका रंजीत ही अपने बाप की अक्ल और नियति पर अफसोस जताता है। यथा "हमारे बूढ़े बाप का दिमाग खराब हो गया है। कोई अपनी बहू को इस तरह मर्द के संग और तुझे मेरी नजर भाँपने की जरूरत नहीं। यह साला क्या मर रहा है? चुटिया पकड़कर यहाँ से गाँव तक खिचेड़ूँगा। लोग तो लोग, साला दरोगा भी मर्द औरत के रिश्ते पर चूं नहीं कर सकता।"[5]

पिता अपने ही पुत्र रंजीत की मानसिकता पर तरस खाता है। सारंग संवेदनाशील पात्र है वह सामंती परिवेश के अवशेषों में पुरुष प्रधान समाज में नारी-जीवन की अंतर्व्यथा की शिकार है। प्रसंगवश वह कहती है – "आज मुझे जिंदगी का एक और सत्य मालूम हो गया रंजीत। एक पेच और खुल गया। मेरी इच्छा का मोल कितना है, यह मुझे बार-बार मत समझाओं। इससे तुम्हारे लिए बनाए हुए भरोसे की चूड़ियाँ टूटने लगती है। क्या न करूँ ? क्या धर्म और क्या अधर्म ? सारे पाखंड की कहानी अब क्या पहेली रही है मेरे लिए ? तुमसे ऐसा क्या माँगा था मैंने ? केवल अपने मन की बात कह दी, यह कसूर था मेरा। बस तुम सूली तैयार करने लगे। जिस घर की मिट्टी का रेशा-रेशा मेरे पाँवों के निशान जीवित है, विश्वास नहीं होता रंजीत की एक पल में ही वह मुझसे कैसे छीन गया ? तुम्हारा कोई नया सूत्र खुलता है और मुझे कुम्हार के

डोर की तरह चाक से काट ले जाता है, न मालूम तुम्हारा अहंकार इतना पैना है कि मेरे औरत होने की लाचारी का गीलापन.....।"[6]

इस उपन्यास में बड़ी बहू के माध्यम से लेखिका ने बड़ी हवेलियों में जीवन बिताने वाली स्त्रियों की व्यथा को व्यक्त किया है। उनका जीवन इतना परतंत्र है कि वह उफ तक नहीं कर सकती है। अपनी इसी व्यथा को वह सारंग के सम्मुख व्यक्त करती हैं । "सारंग, मेरी रजा पूछनेवाला कौन था री ? दूसरों के सहकार उनके फरमान ही हमारे हाथों की लकीरे बन गए। माना कि जमाना ज्यादा नहीं बदला, पर तब सबसे ज्यादा बंधेलुआ थे हम। चूं तक नहीं कर सकते थे। मालिक का मुँह देखने तक को न मिलता था। जिसके सत्र का वजन कोख में लादे रहते थे। जो दो-चार घड़ी रात-बिरात के अँधरे में मिलती, उनमें अपना दुखड़ा लेकर बैठ जाएँ तो मालिक के लिए न तो गाँव में औरतें की कमी थी, न शहर में बेडनियों का टोटा।"[7] स्त्री इस समाज में केवल भोग्या है। वह परम्परा और रीति रिवाजों के पालन के तहत अपने सुख-दुख भी अपने पति से कहने की अधिकारिणी नहीं है।

बड़ी बहू बनिया और जाटों की जातीय मानसिकता को चित्रित करते हुए कहती है कि "सारंग, जाटों को अगर पता लग जाता है कि उनकी बहू बेटी के संग कौन था वो तो उस मर्द की गर्दन पहले उड़ा देते हैं, औरत से सवाल – जवाब पीछे करते हैं। पर बनिया.....इस गाँव में जाटों की होड़ में अपनी मूंछे जरुर तानते हैं, पर मेताबसिंह जैसा आशिक का कुछ नहीं बिगाड़ पाते, उनकी डरपोक प्रकृति औरत पर ही कहर बरसाने लगती है।"[8] क्योंकि बनिया के अनुसार जाति के लिए अपनी इज्जत प्रिय होती है। बड़ी बहू के अनुसार वे भीरु प्रवृत्ति के पुरुष केवल स्त्री पर ही कहर ढाना जानते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के पास कथा वर्णन का कौशल एक अद्भुत संरचना की मिसाल है। इस उपन्यास की कलावती चाची, रामप्यारी, गुलकंदी आदि पात्र पाठक वर्ग पर अपनी अमिट छाप छोड़े बगैर नहीं रहती। यहाँ लेखिका ने गुलकंदी द्वारा दहेज प्रथा का विरोध किया है। ग्रामीण परिवेश से सम्बन्धित होते हुए भी समाज की परवाह किये बगैर अपने मन पसंद साथी को चुनना और समस्त रीति रिवाजों को अँगूठा दिखाते हुए अंतर्जातीय विवाह करना अपने आप में एक चुनौतीपूर्ण कदम है। खेरापातिन चाची जातीय जकड़न तोड़ नहीं पाती। इसलिए अपना समस्त जीवन लोकगीत के प्रस्तुतीकरण में ही बिता देती हैं जो

उसके जीवन निर्वाह का माध्यम है। गाँव में अंधविश्वास के चलते वह मुर्गी पालन का व्यवसाय अपनाकर स्वतंत्र रूप से अपना जीवन संवार नहीं सकती। गुलकंदी की माँ रामप्यारी की भूमिका भी सराहनीय है। विधवा नाइन अपनी पुत्री गुलकंदी का विवाह तय करने के लिए स्वयं वर के घर जाती हैं । इस उपन्यास की नारी पात्र, शोषण, उत्पीड़न आदि शिकार की स्थिति में होते हुए भी नागिन की तरह फुफकार उठ खड़ी होती है। 'चाक' उपन्यास की रेशम स्त्री विमर्श से सरावोर पात्र है। वह अपना जीवन अपनी शर्तों पर जीने की इच्छा रखती है जो समाज को गंवारा नहीं है। अपनी इच्छा को प्राथमिकता देते हुए वह समाज के रीतिरिवाजों और मानदंडों का मुखौटा उतारती है। वह समस्त विधि निषेधों का उल्लंघन करती है विधवा के प्रेम तथा गर्भधारण कर बच्चे को जन्म देने के जन्मसिद्ध अधिकारों का प्रतिपादन ही नहीं करती, अपितु इसे मूर्त रूप प्रदान करती है। जिस पुरुष प्रधान समाज में ऐसी इच्छा की कल्पना करना भी कठिन है, वहाँ वह ऐसा कार्य कर समाज को चुनौती देने का प्रयास करती है। रेशम ऐसे-ऐसे तर्क प्रस्तुत करती है कि सामने वाले दाँतों तले उँगलियाँ चबा डाले। उसका मानना है कि "पेड़ हरा भरा रहे तो, फूल क्यों नहीं लगेंगे ? क्या ऐसा हो सकता है कि ऋतु आए और वल्लरी न फूले ? स्त्री की इस आदिम इच्छा तथा प्राकृतिक सत्य को समाज चाहे स्वीकार करें या न करें परंतु रेशम जैसी स्त्रियाँ चुनौती जरुर देती है। पति करमवीर की विषैली शराब पीने से हुई अकाल मृत्यु के बाद रेशम अपने ढंग से जीने का निर्णय लेती है। गाँव की संस्कृति के अनुसार सास उसे जेठ डोरिया को पति रूप में स्वीकार ने की हिदायत भी देती है। लेकिन रेशम यह निर्णय ठुकराकर अपने मनपसंद पुरुष के साथ संबंध स्थापित कर गर्भधारण करती है। उस पुरुष से विवाह करने की उसकी कोई इच्छा नहीं है, केवल सन्तान सुख के लिए वह संबंध स्थापित करती है। ससुराल की कठोर प्रताड़ना और प्रवादों को झेलते हुए भी अपने निर्णय पर अटल रहती है। जब सास उसे गर्भपात करा लेने का सुझाव देती है तो वह सास पर घायल शेरनी की भाँति टूट पड़ती है। अपने मातृत्व की सहज आकांक्षा को औचित्य प्रदान करते हुए अपनी सास के रूढ़ संस्कारों पर प्रहार करती है "अपने पूत के लिए तो रोती है और मेरे बालक की हत्या पर उतारू है।"[9] उसे अपने अजन्में बालक के प्रति प्रगाढ़ प्रेम है, वह उसी के सहारे संपूर्ण वैधव्य जीवन व्यतीत करना चाहती है। उसे जिंदगी जीने के लिए किसी पुरुष के सहारे की जरूरत महसूस नहीं होती। इसलिए वह अपनी सास से दो टूक बात करती है

"अम्मा तुम बूढी होकर ऐसी बात करती हो ? पिता समान जेठ का हाथ पकड़ लूँ ? फिर जो बच्चे का बाप है ही नहीं उसको बाप का दर्जा क्यूँ दूँ ? ऐसा ही करना होता तो तुम्हारे बड़े पूत का ही बालक करती ?"[10]

रेशम में दूरदर्शी प्रवृत्ति भी है, वह जानती है किसी अन्य पुरुष से विवाह कर वह अपने पति के हिस्से से भी हाथ धो बैठेगी और अगर डोरिया से विवाह करती है तो जीवन भर थानसिंह का गुलाम बन कर जीना पड़ेगा। डोरिया के पास बल तो है लेकिन बुद्धि नहीं। इस बात का संकेत सारंग और रेशम के संवादों से उजागर होता है –उसकी समझ में यह बात आ जाती है कि डोरिया को औरत की जरूरत है, और थानसिंह को जमीन और मजदूर दोनों की। वह सोचती है कितने फायदे की बात है मेरे बड़े जेठ थानसिंह मास्टर के लिए, करमवीर के हिस्से के जायदाद के संग-संग मैं भी डोरिया के खाते में चली जाऊँगी और जेठजी के लिए मजबूर कदकाठी का बेवकूफ भाई और उसकी जोरू के रूप में दो गुलाम मिल जायेंगे। संग-संग एक मुश्त खेती।

लेकिन अंत में मर्दों की बिरादरी की मर्यादा तोड़ने के जुर्म में रेशम को पूर्वनियोजित तरीके से 'मौत के घाट' उतार दिया जाता है। निषेध दिशा में स्त्री और पुरुष दोनों प्रवेश करते हैं किन्तु दंड की भागीदार केवल स्त्री ही होती है। रेशम मानव-विरोधी स्थितियों में परिवर्तन लाने अपना संपूर्ण जीवन ही दाँव पर लगा देती है। लेकिन सफल नहीं हो पाती। उसकी तार्किक विचार दृष्टि सामान्य पाठकों के मन पर अमिट छाप छोड़ देती है। 'चाक' उपन्यास में रेशम के जीवन की परिस्थिति के परिवेशगत अंकन का कौशल मैत्रेयी पुष्पा की लेखन कला का उत्कृष्ट रूप है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों का कथ्य नारी जीवन के राग-विराग, मान-अपमान, सुख-दुख, आशा-निराशा के विभिन्न पहलूओं को अलग-अलग आयामों में पेश करता है। मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' उपन्यास की नायिका सारंग न केवल समसामयिक यथार्थ से टकराती है बल्कि उसका अतिक्रमण करना चाहती है। वह अपना यथार्थपरख आत्मविश्लेषण करती है कि "मैं दूसरी औरतों की तरह क्यों नहीं रहती ? मैं जो कर रही हूँ, गाँव में और कोई क्यों नहीं कर रही ? जो बातें गलत हैं, उनको औरतें गलत भी मानती हैं, पर मर्दों की दुनिया में दखल तो नहीं देती। मैं घूंघट सिराना भूलकर अखाड़े पर कान-आँखे टाँगे रही। लोकरीति भूल जाना....खता नहीं है क्या ? अम्मा की बात याद आती है, भले वह सौतेली थी, पर कहती सही थी –

सारंग, तेरी आदतें तुझे ही दुःख देगी। बेटी की जात.....इतनी खुद हिम्मत। आज आग की धार में बह रही हूँ मैं।"[11] यह सारंग का ही नहीं बल्कि आम भारतीय नारी का भी यही विचार हो सकता है।

सारंग अपनी इच्छाओं के प्रतिरूप पुरुष श्रीधर मास्टर से प्रेम करती है, वह रंजीत से पायी हुई असंतुष्टि की पूर्ति श्रीधर से पाना चाहती है। इसलिए सोचती है कि वह निर्भय, साहसी और दिलेर योद्धा है। तो क्या मैं इसी अदा की गुलाम होती जा रही हूँ। सोच रही है वह शायद। तुम मर्द की जात हो श्रीधर, कुछ भी कर गुजर सकते हो। । सामान्य पाठक को भी महसूस होता है कि सारंग मानवीय संबंधों में विश्वास रखती है। इसलिए दलित जाति के मास्टर श्रीधर के पाँव छूना उसे गलत नहीं लगता। उसका यह व्यवहार घर परिवार और समाज के कथाकथित ठेकेदारों को सुहाता नहीं हैं। वह सोचती है कि "आदमी कोई भी हो, औरत कलेजे में भरे मोम का अंदाज कैसे लगा सकती है ? जबकि औरतें भी नहीं तोल पा रही अपनी बराबरी पर रखकर । मेरे दिल जरा सा ताप पाते ही बह निकला। बाबा, मैंने इस घर की बहू के लिए बनाए कायदों को तोड़ा जरुर है, पर किसी गलत इरादे से नहीं। माना कि दोहरा अपराध कर बैठी हूँ – एक तो परदेसी गैर मर्द, दूसरे छोटी कौम के पाँवों में सर टेकना। लेकिन मैं क्या करती, गुरुकुल में गुरु का अर्थ बड़ा विराट था। लाख खामियाँ सही, लेकिन वहाँ ऊँचता-नीचता जाति को लेकर नहीं थी। बाबा, कभी तुम्हारे साथ भी तो ऐसा हुआ होगा कि तुम अपने इंसानी प्रेम की बाँध न पाए हो....। यह मास्टर जादूगर है। मुझे होश ही नहीं रहा।"[12]

सारंग का पति रंजीत पुरुष प्रधान समाज की सामंती प्रवृत्ति का प्रतिनिधि पात्र है। वह एक ऐसा टिपिकल पात्र है, जो स्त्री पर जुल्म ढाना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता है। सारंग उसकी पिछड़ी हुई मानसिकता और व्यवहार से व्यथित है। सारंग अपने पति के अस्थिर व्यक्तित्व से परेशान हो जाती है। वह पुरुष होते हुए भी स्वयं निर्णय नहीं ले सकता। वह दूसरों की बातों में आकर सारंग के साथ अन्याय करता है। वह प्रतिकार रूप में कहती है कि "तुम्हारी गलती नहीं। तुम भी क्या करो ? नई-नई बातें अपनाना चाहते हो, पर पुराने चरखे को तोड़कर फेंकना तुम्हारे बस का नहीं। मुझे इस बात का दुख नहीं। मलाल सिर्फ इतना है कि मेरे चाल-चलन का हिसाब अब मनोहर और भूरा जैसे लोग रखेंगे। और उनके दिए फैसलों पर तुम सजा सुनाओगे। रंजीत, पहले पुरानी फसल काटों, तब नया बीज उगेगा।"[13]

मैत्रेयी पुष्पा अपने 'चाक' उपन्यास में स्त्री विमर्श और जीवन दर्शन का एक नया सोपान रचती हैं। सारंग और श्रीधर के आंतरिक संबंध समाज के नीति-नियमों और नैतिकता का अतिक्रमण कर जाते हैं। पर उनका आपसी प्रेम व्यवहार केवल वासना या व्यभिचार के लिए नहीं था, बल्कि अपनी टूटती आकांक्षाओं में कही जी लेने के लिए था। मनोविश्लेषण की भाषा में क्षिति-पूर्ति की आवाज थी। इसका वर्णन करते हुए लेखिका कहती है कि "श्रीधर के मन में सारंग के प्रति आक्रोश जागा है या असहमति की तीव्र प्रक्रिया..... वह समझा सकती है बेटे कि मैं वह रहस्य खोलने जा रही हूँ जिसे खोलना औरत के लिए वर्जित है ? लोकलाज का डर मुझे नहीं। तेरे पिता को लेकर मैं गद्दारी नहीं कर रही। यह व्यभिचार नहीं आजादी है। चंदन इस समय अच्छी सीखों के सिवा अन्य किसी अच्छाई को नहीं समझता। नैतिकता की बातें दिन में दस बार उसे हम ही बताते होंगे। वह माँ को माफ करेगा न अपने मास्साब को। सारंग को वह अलग करके क्यों देखेगा,अन्य स्त्रियों के मुकाबले।"[14]

अपने ही जीवन-संघर्ष को अगली पीढ़ी की मानसिकता से देखना एक प्रकार से मैत्रेयी पुष्पा के कथा वर्णन का विश्वसनीय और संप्रेषणीय गुण है। पाठक वर्ग भी सारंग के आत्मसंघर्ष में जाने-अनजाने में सहभागीदार बन जाते हैं। सारंग और रंजीत के संबंध आत्मीयता और बिखराव के ताने बाने में अंकित है। आत्मीय क्षणों में वह महसूस करती है कि "आज्ञाकारी पति, सीमा का भाग्य ! इतरा रही है आज वह। सारंग शोक में डूबी है धिक्कार रही है खुद को – मेरे रंजीत भी तो मेरा कहने पर तैयार रहते हैं.....लेकिन मेरी जिद। मैं कैसी औरत हूँ, स्त्री की प्रकृति के अनुसार तिलरी और चुनरी जैसी मनभावन चीजों की इच्छा करके उनसे रूठती नहीं.....यदि माँगती तो रंजीत सौ जगह से जुटाने की कोशिश करते। मान-मनव्वल में पीछे नहीं रहते।"[15]

सारंग आम भारतीय नारी की मान मर्यादा और सीमा को जानती है, औरत अपने घने-कपड़े पहनने-ओढ़ने की चीज पति से मांग सकती है, पर स्वच्छन्दता और स्वतंत्र व्यक्तित्व की कल्पना हमारे ग्रामीण अंचल में संभव नहीं है। वह आत्मविश्लेषण के रूप से सोचती है कि मैं आसमान का चाँद तोड़ने की बातें करती हूँ, जो उनके क्या, किसी पुरुष के बस की बात नहीं। सारंग के माध्यम से मैत्रेयी पुष्पा जाति प्रथा से विलग होकर अंतर्जातीय विवाह करने वाली नारी पात्रों की वेदना को रेखांकित करती है। उपन्यास

के अंत में रेशम से लेकर गुलकंदी तक न जाने कितनी ही औरतें परम्परा की वेदी पर ज़िंदा जलाई जाती हैं । अन्तश्चेतना में मातृशक्ति को याद कर सारंग व्यथित होती है । 'सारंग की आँखों की ज्योति कुंद पड़ने लगी । हाथ जोड़कर आँख मूंदे वह खड़ी है – औ धरी माता ! और भैमइया ! ओ दुरागे भवानी....तेरा प्यार-दुलार, मोह-ममता चुक गई क्या ? या पक्षपात करती है बेटियों से ? बेटियों का खून स्वादिष्ट है, सो पीती है डायन की तरह.....कि हमारे ही खून से पुष्टि है और बेटों को ? हम पूज-पूज हारे, असीस में मिला प्राणहंता श्राप । माँ, तेरी कोख से जन्म पेड़ भी गिरता है तो हिल उड़ती है, तो हमारे मरने-फुकने और सुलगने पर तू मौन और धुँधलाओं बस । क्यों नहीं डोल उठती कि प्रलय हो जाय । क्यों नहीं फट जाती कि यह दुनिया समा जाय ।"[16]

सारंग के माध्यम से उपर्युक्त शब्दों में मैत्रेयी पुष्पा नारी जीवन की संपूर्ण व्यथा और कथा को एक नए साँचे में पिरोती है । अगर कोई मातृशक्ति है वो क्या यह डर है ? जो पुत्रों को संरक्षण देती है और बेटियों का खून पीती है ? समाज में व्याप्त दोयम दर्जे की इस स्थिति का चित्रण मैत्रेयी पुष्पा जीवंतता के साथ करती है । समाज के नियम-नियंताओं के समक्ष यह प्रश्न रखने में सफल होती है कि यदि स्त्री और पुरुष दोनों एक-दुसरे के पूरक है, दोनों के आपसी समन्वय और सामंजस्य से समाज निर्मित है तो फिर स्त्री और पुरुष के लिए पृथक-पृथक सामाजिक नियम और मर्यादाओं का निर्माण क्यों किया गया है ? प्रकारांतर से नारी जीवन की वेदना व्यथा और बेबसी यहाँ कलात्मक रूप में प्रतिबिंबित होती है । जो जार्ज लुकाच के मुहावरे में प्रतिबिम्ब है । "दूसरे शब्दों में शताब्दियों से शोषण भारतीय नारी के पक्ष में दिया गया मैत्रेयी पुष्पा का उपर्युक्त कथन नारी दर्शन का अभिनव एफिडेफिट है ।"[17]

4. ख. प्रतिरोध का स्वर

समकालीन हिंदी उपन्यासों में विशिष्ट विषय, विशिष्ट समाज अथवा विशिष्ट वर्ग को विमर्श के केंद्र में रखते हुए सशक्त लेखन हुआ है । श्रेष्ठ साहित्य वही होता है जो अपने भीतर बाहर सार्वभौमिक संदेशों, मूल्यों तथा उद्देश्य को समाहित किये रखता है, क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण होता है तथा वह सार्वकालिक, सार्वदेशिक एवं सार्वभौमिक होता है । 'चाक' में मैत्रेयी पुष्पा ने जीवन की उन समस्याओं को रेखांकित किया है जो गहन वास्तविकता के साथ भावनाओं के सहज उच्छलन, मानसिक अन्तर्द्वन्द का

गमन करके संवेदनात्मक धरातल को संस्पर्श करती है। स्त्रियों के उत्पीड़न और दासता का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना असमानता और उत्पीड़न पर आधारित सामाजिक संरचनाओं के उद्भव और विकास के इतिहास। प्राचीन साहित्य में अनेकों मिथक और कथाएँ मौजूद हैं जो पुरुष स्वामित्व की सामाजिक स्थिति के विरुद्ध स्त्री के प्रतिरोध का साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं।

सदियों से होते आये शोषण और दमन के प्रति स्त्री चेतना ने ही नारी विमर्श को जन्म दिया है। समकालीन हिंदी उपन्यासों में नारी वर्ग को विमर्श के केंद्र में रखते हुए सशक्त लेखन हुआ है। 1960 के बाद ही मुख्यतः विमर्श केंद्रित लेखन दृष्टिगोचर होता है। साहित्य के संदर्भ में 'विमर्श' संकल्पना आधुनिक युग की देन है। 'विमर्श' शब्द मूलतः विचार विनियम तथा चिंतन मनन, गहन सोच-विचार विवेचन रूपायित करता है। भोलानाथ तिवारी के अनुसार विमर्श का अर्थ है – "तबादला-ए-ख्याल, परामर्श सोच-विचार वस्तुतः कारगर ढंग से सोचकर वस्तुनिष्ठ तथा तर्क संगत विवेचन एवं अलोचना करना ही विमर्श करना है।"[18]

साहित्यकार अपने युगीन वातावरण से पूर्णतः प्रभावित होता है। वह अपने व्यक्तिगत अनुभवों का लेखन के द्वारा सामाजिक बनाता है अर्थात एक सच्चा साहित्यकार अपनी वैयक्तिकता को पिघला कर उसे सामाजिक रूप में प्रस्तुत करता है। वैयक्तिकता को निर्वैयक्तिकता में परिवर्तित करना ही कलाकार की कला है, जो पाठकों को मंत्रमुग्ध करती है। समय की वास्तविकता को उजागर करने वाला साहित्य गुणात्मक होता है तथा सदैव प्रासंगिक रहता है। जनमानस को प्रकाश प्रदान करते हुए भविष्य में दिशा निर्देश भी देता है। आधुनिक काल में विमर्शवादी अवधारणा के अंतर्गत उत्तर आधुनिक विमर्श, झुग्गी-झोपड़ी विमर्श, विखण्डन एवं विघटन विमर्श, स्त्री विमर्श, शिक्षा विमर्श, लैंगिक विमर्श, श्रमिक विमर्श, बाजार विमर्श, दलित विमर्श आदि का समकालीन उपन्यासों में विवेचन विश्लेषण किया गया है।

स्त्री को अपने अस्तित्व के बोध ने विमर्श को प्रेरणा प्रदान की है। हिंदी साहित्य में महिला कथाकारों की एक सशक्त पीढ़ी है, जिन्होंने अपने रचना संसार की विविध विमर्श मूलक विचारों से श्रृंगारिक एवं सुसज्जित किया है। उपन्यास साहित्य के संदर्भ में महिला लेखकों में मैत्रेयी पुष्पा का योगदान अविस्मरणीय है। इन्होंने ऐसे यथार्थ को उद्घाटित करके पाठकों के समक्ष रखा है। मैत्रेयी पुष्पा ने

जीवन की उन समस्याओं को रेखांकित किया है जो गहन वास्तविकता के साथ भावनाओं से सहज उच्छलन, मानसिक अंर्तद्वंद का गमन करके संवेदनात्मक धरातल का संस्पर्श करती है। मैत्रेयी पुष्पा एक स्त्री कथाकार हैं, किन्तु उनकी विमर्शवादी अवधारणा के अंतर्गत स्त्री विमर्श के अतिरिक्त बाल विमर्श, विखंडन विमर्श, शिक्षा विमर्श तथा सेक्स विमर्श का चिंतन उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है।

स्त्री विमर्श का एक अभिन्न अंग आत्मनिर्भरता का हिमायती होना है। स्त्री का जितना शोषण आत्मनिर्भरता के अभाव में हुआ है उतना शायद उसके आत्म निर्भर होने पर नहीं होता। "स्त्री विमर्श वास्तव में आत्म-चेतना, आत्म-सम्मान, आत्म-गौरव, समता व समानाधिकार की पहल का नाम है। स्त्री विमर्श स्त्री अस्मिता का, आत्म चेतना का अन्याय के विरोध में खड़े रहने का लड़ाकू वृत्ति का न केवल परिचय देता है, अपितु स्त्री चिंतन को बल प्रदान करता है। वर्तमान नारी आर्थिक रूप से स्वयंपूर्ण बनती जा रही है। आत्मगौरव, अस्तित्वबोध, आत्मचेतना, आत्म निर्भरता ने नारी को सशक्त बना दिया है।"[19] 'स्व' के प्रति सजगता व अस्तित्व की चेतना स्त्री विमर्श की मुख्य शक्ति है जो हिंदी उपन्यासों में पर्याप्त मात्रा में लक्षित होती है।

स्त्री कथाकारों ने अपने अनुभवों, आँखों देखी घटनाओं के माध्यम से रुढ़िवादिता तथा दमन करने वाली सामाजिक व्यवस्था पर चोट की है। मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक' भी नारी चेतना के विकास की गाथा है। वर्तमान समय में नारी विमर्श की जड़े फैलती जा रही हैं। स्त्री विमर्श में रीतियों की अपेक्षा बुद्धि की कसौटी पर, विषमता की अपेक्षा समता की कसौटी पर, संस्कृति की अपेक्षा कार्य शक्ति की कसौटी पर और लिंगात्मक की अपेक्षा गुणात्मक की कसौटी पर व्यक्ति का मूल्यांकन किया गया है। "उभरती हुई नारी चेतना को आज भी समाज साँप के फन की तरह देखता है तथा उसे कुचलने के लिए लाठी का सहारा लेता है। स्त्री की अस्मिता से समाज परेशान हुए बिना नहीं रह सकता। समाज में सचेतन नारी के प्रति आज भी दकियानूसी दृष्टि रही है। फिर भी नारी अपने दमखम के साथ निर्णय पर अड़ी रही है।"[20] यही बात 'चाक' में प्रखर रूप से उभर कर सामने आती है। इसी प्रकार की नारी चेतना को जागृत करने की गाथा उस अतरपुर गाँव की है जहाँ औरतें पुरुषीय अहं, शील और सतीत्व की रक्षा के नाम पर बलि चढ़ाई जाती हैं । रस्सी के फंदे में रुक्मणि झूल जाती है। रामदेई कुएँ में कूद जाती है। करबन नदी में नारायणी

समाधि लेती है। चंदना ससुराल के रास्ते में ही पति के द्वारा मौत के घाट उतार दी जाती है। रानी मंझा को देश से निकालना और मृत्युदंड एक साथ मिलता है।

ऐसे इतिहास वाले गाँव में करमवीर की ब्याहता, साधजी और हुकुमकौर की बहू, डोरिया और थानसिंह बलिष्ठ जेठों की भाभी, गुलाबी सी रंगत और संगमरमर की तराशी देह वाली रेशम भरी जवानी में पति की मृत्यु के पाँच महीने बाद गर्भ धारण करके दिलेरी से उसका ऐलान कर अपने प्रथम प्रतिरोध का परिचय देती है। रीति-रिवाजों ने, शास्त्रों-पुराणों ने, घर-गाँवों ने उसे मात्र विधवा मान लिया, औरत नहीं। कोई सोच न सका कि वह न तो पत्थर की देवी है और न लोगों का सत्यानाश करने वाली राक्षसी। वह हाड़-मांस की बनी औरत है। रेशम अपनी सास से कहती है – "अम्मा, तू, तो बिरथा ही दांत किटकिटा रही है। तुम्हारे पूत की चिता ठंडी हो जाने से क्या मेरी देह की आग बुझ जाती। जीतों-मरतों का भेद भी भूल गई तुम। बेटे के संग मैं भी मरी मान ली मेरे चाल-चलन की झंडी फहराना जरुरी हैं ? बिरथा ही छानबीन करने में लगी हो। आज को तुम्हारा बेटा मेरी जगह होता तो पूछती कि तू किसके संग सोया था ? अब उसकी बांह गह लेती। मेरे मरे पीछे तेरहवीं तक का सब्र न करता और ले आता दूसरी। तुम खुश हो रही होती कि पूत की उजड़ी जिंदगी बस गई। पर मेरा फजीता करने पर तुली हो।"[21] किन्तु रेशम का यह प्रतिरोध कुकर्मों की संज्ञा पाता है। एक पिछड़े देश के पिछड़े जिले के पिछड़े गाँव की अति सजग औरत को कौन जीने देता है। जेठ डोरिया उसकी हत्या कर देता है। रेशम अपने सारे प्रतिरोध के साथ भूमि समाधि लेती है। यह नैतिकता की वेदी पर अस्थियों की बलि है। उसकी बहन सारंग पुरुष और औरत के लिए बने क़ानूनी अपराध को चुनौती देने के बावजूद नितांत एवं कुंठित स्थिति में दिखाई देती है।

'चाक' एक खुला उपन्यास है। इसका अंत खुला है और संभावनाएँ सच्चे मानव की उम्मीदों का स्पर्श करती हैं। 'चाक' की कथा में से हमारे सामने सारंग का चित्र बार-बार उभर कर आता है। इसमें यातनाएँ और मुक्त होने की चेष्टाएँ हैं। 'चाक' की नायिका ने वेदना और आँसू का आलाप छोड़ संघर्ष की भूमि को स्वीकार किया है। नायिका सारंग उस गाँव की बहू हैं जहाँ के बड़े-बड़े प्रधान नम्बरदार, सेठ-पंडित ऊँची-नीची जातियों के तमाम पुरुष- महापुरुष न्याय के संरक्षक न होकर अन्याय के समक्ष गूंगे तमाशबीन दिखाई देते हैं। स्त्री छल से मारी जाती हैं। ऐसे ही छल से सारंग की फूफेरी बहन रेशम मार दी

गई। सारंग ने पति के बल पर प्रण किया कि जब तक हत्यारे को हथकड़ी नहीं लग जाती अपने बाल नहीं समेटूगी और अंततः हथकड़ी लगवाकर ही रहती है। और स्त्री के दृढ़ निश्चय को नया आयाम प्रदान करती है।

सारंग लगातार आग पर चल रही है और जो आग पर चलना सीख लेता है, वह सोना हो जाता है। पुरुषीय अत्याचारों के अनेक बिम्ब उसके मन पर खुदे हैं। अजीब नैतिकता है "मर्द औरत को छूता है तो उसका उद्धार कर देता है औरत मर्द को छुए तो उसे पताल में डुबा देता है।"[22] पौराणिक धारणा है कि श्रीकृष्ण ने गोपियों के संग नहीं, वेद की ऋचाओं के संग जलक्रीड़ा की थी। गोपियाँ हथनियाँ बनी, भगवान को जलक्रीड़ा कराई और मोहन-मुरारी को छूकर पवित्र हुई। हरिप्यारी और गुलकंदी जैसी स्त्रियों को जिंदा जला देने की घटना कोई भूलने की बात नहीं है। मनोहर की बहू को जिस तरह मिर्चों के धुएँ पर औधाया जाता है। इस गाँव में किसी मर्द के साथ तो ऐसा कभी नहीं हुआ। प्रश्न यह है कि किसी पुरुष के साथ ऐसा क्यों नहीं हुआ ? क्या पुरुषों ने आज तक कोई गलती नहीं की है ? सारंग के बेटे को रंजीत बार-बार उससे छीनता है। वह जानती है कि गद्दारी, पाप और अधर्म की सजा औरतों को अवसर ढूंढ-ढूढ़कर दी जाती है। विधवा पंचान्न बीबी का प्रेम प्रसंग जानकार उसका अपना ही पिता भंगिन से वक्ष पोहे-पशु की तरह गर्म लोहे से दगवा देता है। लौंगसिरी बीबी का पति उन्हें छोड़ कर भाग जाता है और वह अकेले ही जीवन संघर्ष करती है। थानसिंह को 40 वर्षीय बैकुंठी खरीदता है और राममूर्ति को बदनाम करने के लिए भूरा गली में उसका हाथ पकड़ लेता है।

सारंग एक जाटिनी है, जो गुरुकुल से पढ़ी है। उसका व्यक्तित्व लोहे सा मजबूत है। वह हिम्मत और साहस की मालकिन है। उसके आँगन में सावन तपता है। रंजीत को वह रबड़ की तरह खींच लेती है। वह अपने जीवन रथ की स्वयं सारथी है। यह जानकर भी कि पुरुषों की दुनिया में हस्तक्षेप करना आग की धार पर चलना है, उनकी बराबरी की कामना, खतरे की घंटी बजाना है- लेकिन वह हिम्मत नही हारती और उनसे लोहा लोहा लेकर पुरुष वर्चस्व को चुनौती देती है।

गुरुकुल में वह शारदा और शकुन्तला पर हुए अन्याय का प्रतिरोध लेती है। रेशम और उसके अजन्मे बच्चे के हत्यारे, सारंग का अपमान करने वाले डोरिया को वह कुश्ती के बहाने कैलासी सिंह से

पिटवाकर ही चैन पाती है। पत्नी को प्रताड़ित एवं पीड़ित करने के लिए बेटे को वनवास देने वाले और मास्टर श्रीधर की जमकर पिटाई करने वाले पति रंजीत के प्रतिरोध में श्रीधर से संबंध स्थापित करती है। गुरुकुल में पढ़ने वाली व्रत-उपवास रखने वाली, बेटे के लिए जार-जार रोने वाली, खेतों में काम करने वाली, सहज संकोची, घरेलू सारंग श्रीधर से संबंध जोड़ लेती है ? यह एक मनोवैज्ञानिक स्थिति है। किशोरावस्था के प्रथम उद्यम आवेग में वह गुरुकुल के शास्त्रीजी के पास भी एक बार गई थी, किन्तु उनकी शारीरिक कामुकता की अश्लील अभिव्यक्ति के कारण उसका मन प्रतिरोध कर उठा था। डॉ सूरज पालीवाल के शब्दों में " सारंग में ऐसा मलूक बहु अर्थात् द्रौपदी तत्व है कि सारंग से छः साल छोटा देवर उसकी सूरत निहारता रहता है। भव्य शालीनता और अति सदाचारी सादगी में रहते हुए उपन्यासकार मैत्रेयी पुष्पा देह के सच और सच के श्रृंगार को रचने में न कोई धोखा खाना चाहती है, न धोखा देना चाहती है।"[23] पति के स्थान पर चुनाव का पर्चा भरने के कारण सारंग पर परम्परित दाम्पत्य, सात फेरों वाली संस्कृति एवं स्त्री धर्म को अस्वीकारने का प्रश्नचिन्ह लगाया जाता है। श्रीधर के साथ उसके सम्बन्धों को औचित्य 'धर्म क्षेत्र कुरुक्षेत्र' की मान्यता अगर दे भी दे तो भी सनातन नैतिकता इसे पाप कथा ही कहती है। वह न अबोध है, न विधवा, न कुंवारी और न जवानी की मारी। फिर भी वह श्रीधर की राधा रानी बनी डोलती है। मीराबाई की तरह घर-बार त्यागती है गाँववालों के लिए वह रंडी, छिनार से भी बढ़कर है। पति की निगाहों में वह बेशर्म, गद्दार, बदकार और पति द्रोहिणी है। आलोचक मधु सारंग की मनः स्थिति का विश्लेषण करते हुए लिखती है, "नायिका सारंग प्रायः उतनी ही अगाधमना है उसकी त्रासदी उन स्त्रियों की त्रासदी है जो अपनी जरूरत से भी ज्यादा पारदर्शी, पर उग्र पतियों से स्नेह तो करती है, पर लाख चाहकर भी उन्हें अपने सपनों के पूर्ण पुरुष का दर्जा नहीं दे पाती। अपने कलेजे में टूटकर प्यार करने का जोर नहीं जूटा पाती।"[24]

पुरुष के विषय में मैत्रेयी पुष्पा के विचार बड़े स्पष्ट है "जिसने युग-युगांतर से आज तक पत्नी की अग्निपरीक्षा लेने की जिम्मेदारी निभाई है या जिसको गृह निष्कासन का जन्मसिद्ध अधिकार हासिल है – जमाना बदल गया है पुरुष नहीं बदले, स्वयंभुवों की यात्राएं स्थगित करे, ऐसी किसकी हिम्मत है। ये भावनाएँ, इच्छाएँ, आकांक्षाएँ स्त्री की हैं जो श्लील-अश्लील, नैतिक-अनैतिक और पाप-पुण्य की परिभाषा भूल रही हो। उस दासी की है जो गुलाम रहते-रहते बेजार हो गई है। मनुष्य के रूप में जीना कैसा होता है मनुष्य

होने के नाते जानना चाहती है। पढ़े लिखे और सभ्य लोग उसकी बात पर गौर करें, यही निवेदन है।"[25] सारंग जिद्दी, हठी और अपनी बात पर अड़ जाने वाली खुदमुख्तार औरत है। पति को फतेहसिंह प्रधान की चालों से वह सचेत करती है। सारंग का प्रतिरोध यौन-नैतिकता के दोगले मानदंडों के विरुद्ध है। पति द्वारा मिलने वाला अपमान और वात्सल्य की छीना-झपटी उसे और भी प्रतिरोधित कर देती हैं। सारंग की यह विडम्बना है कि अकेली औरत किसी भी विधान को तोड़ नहीं सकती और अगर तोड़ने की चेष्टा भी करे तो उसे अपराधिनी मान लिया जाता है। आज के नैतिक मूल्यों की पड़ताल सारंग, रेशम, गुलकंदी, लौंगसिरी बीबी, कलावती चाची, राममूर्ति, बैकंठी की दसों अंगुलियों से फिसलती जा रही है। अश्लीलता और अपसंस्कृति के आरोप से वे कैसे मुक्ति पाए।

सारंग उस जाति की है जहाँ यारी और दुश्मनी उठाईगीरों की तरह नहीं निभाए जाते, ये तो पूरी जिन्दगी चलने वाली चीजें हैं। अतरपुर गाँव युद्धभूमि से भी भयंकर है। कोर्ट-कचहरी बड़े लोगों के लिए कुछ भी नहीं। कानून-कायदे पैसा देकर कागज के ऊपर से पोंछ देने वाली इबारत भर है। इस गाँव में कायरता और गुंडई का बोलबाला है। मास्टर श्रीधर को पीटा जाता है, रंजीत पर भूरा द्वारा हमला करवाया जाता है। पन्ना सिंह पर सुलेमान हमला करता है। गुलकंदी, हरिप्यारी और बंसु देवा को जिंदा जला दिया जाता है। फतेहसिंह हो या साधजी सब बंदगोभी के फूल हैं । तोता की बहू रेशम के पक्ष में गवाही नहीं देती तो उसका घर पक्का बन जाता है। सुन्सा तेली को हरप्रसाद को पकड़ने के लिए दस हजार रुपया मिलते हैं। जेल जाना यहाँ सम्मानसूचक माना गया है। इस गाँव में जाति-पाँति का बोलबाला है तथा नारी को ही प्रताड़ना सहन करनी पड़ती है। नाइन गुलकंदी बिसुनदेवा के साथ भाग जाती है, इसलिए हरप्रसाद की बहन से शादी के लिए कोई हाँ नहीं करता। कुम्हार श्रीधर के पाँव छूने के कारण जाटिनी सारंग की पूरे गाँव में बदनामी होती है। गुलकंदी और बिसुनदेव का जीवन जाति-पाँति के करण बली चढ़ा दी जाती है।

उपन्यास में रंजीत के बाबा गजाधर सिंह, रिटायर्ड फौजी अतीत के अभिप्रायों और विवरणों के साथ-साथ एक सच्चे सीधे पुरुष के रूप में आए हैं। वे अपने भ्रष्ट पुलिस बेटे दलवीर को उसके झूठ, रिश्वतखोरी, परस्त्रीगमन तथा व्यभिचार के कारण भरी बिरादरी में लताड़ देते हैं। डोरिया द्वारा सारंग का अपमान होने पर साधजी के यहाँ बंदूक लेकर पहुँच जाते हैं "हम भीष्म पितामह नहीं की द्रोपदी को भरी

सभा में नंगी होता देख लें। वे देवता थे देख लेते होंगे। हम देवता नहीं।"[26] गजाधर के पास अग्निबाणों का व्यवस्थित सिलसिला है। सारंग जब लौंगसिरी बीबी के यहाँ मास्टर के साथ रात बिताकर आती है तो गजाधर स्पष्ट कहते हैं, "तू श्रीधर के साथ घात न करता रंजीत तो सारंग उसका उचक्कापन करेगा तो कौन सी औरत गले लगा।"[27]

सारंग में अंतर्मन की स्थिति मिलती है। रंजीत उसे हमेशा कहता है औरतों जैसा आचरण करो। अपनी सीमाएं देखो-गहन कपड़े मांगो। पर सारंग कभी रेशम, गुलकंदी, शारदा, शकुंतला का बदला लेने की सोचती है और कभी पति के स्थान पर चुनाव पर्चा भर आती है। चुनाव के दिनों में सारंग को गुलकंदी की हत्या की पीड़ा दिवास्वप्नों में दिखाई देती है। बेटे का दलवीर के यहाँ चले जाने पर उसे वह स्वप्न में माँ के लिए तड़पता दिखता है। ये स्थितियाँ नारी-चेतना का मूल और परिणाम घोषित करती हैं। इस पर डॉ. किरण लिखती है- "'चाक' की औरतें पुरुष समाज पर भारी पड़ रही हैं। कही देह ताप के कारण, कहीं पुरुष-नारी के लिए बने अलग-अलग मानदंडों के कारण और कहीं अपने बौद्धिक विकास के कारण ये औरतें उन गोरी मेमों से भी आगे है, रास-रंग, नाच-गान का साथ तो देती थी, पर वायसराय या शासक कभी नहीं बनी। 'चाक' की सारंग चुनाव जीतकर अपना अस्तित्व और प्रतिरोध मात्र सार्थक करने का संकल्प लिए हैं।"[28]

'चाक' में मैत्रेयी पुष्पा ने सारंग का जो चरित्र गढ़ा है वह वर्तमान स्त्रियों को प्रेरणा देने वाला है। उसका प्रत्येक विद्रोह पुरुषसत्ता के खिलाफ है। जिसने सदा से स्त्री को अपने अधिकार में रखा है और रखना चाहता है। स्त्री विमर्श में इसी पुरुष वादी मानसिकता का विद्रोह है। 'चाक' उपन्यास की सारंग स्त्री विमर्श एवं स्त्री चेतना को नवीन रूप प्रदान करती है। मैत्रेयी पुष्पा ने इसलिए स्वयं कहा है- "चाक उपन्यास का प्रारम्भ जिस कथा से शुरू हुआ था वह कथा निश्चित ही स्त्री विमर्श की महानीयता की कथा थी। वहाँ एक स्त्री की हत्या के विरोध में दूसरी स्त्री तनकर खड़ी थी। यहाँ रेशम और सारंग नहीं थी, दोनों बहनों का रिश्ता ही नहीं था बल्कि एक स्त्री का दूसरी स्त्री के प्रति आत्मीय संबंध था जो हत्या का बदला लेने के लिए तैयार करता है। सारंग जिस प्रकार गुस्से में हैं, वह देखने लायक है।"[29]

इस तरह मैत्रेयी पुष्पा के इस उपन्यास में प्रतिरोध का स्वर जगह जगह पर खूब देखने को मिलते हैं। उन्होंने सबसे अधिक नारी पात्रों में सारंग के माध्यम से पुरुष सत्ता के खिलाप प्रतिरोध ली है। तत्कालीन चल रही नारी के प्रति पुरुषवादी मानसिकता को उन्होंने इस उपन्यास के माध्यम से बदलने की कोशिश की है।

4. ग. मैत्रेयी पुष्पा की स्त्री दृष्टि का वैशिष्ट्य

किसी भी सभ्यता की विशिष्टता एवं उसके विकास की सीमा को जानने के लिए स्त्री की स्थिति का अवलोकन नितांत आवश्यक है, क्योंकि मानव-जीवन के सर्वतोमुखी विकास में नारी की अहम भूमिका रही है। स्त्री जीवन की सबसे बड़ी विड़म्बना भारतीय समाज में यह है कि भारत के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक जीवन पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है, लेकिन सामाजशास्त्रियों ने स्त्री के जीवन पर उतना ध्यान केंद्रित नहीं किया, जितना कि उनसे अपेक्षित था। लेकिन साहित्यकारों ने अपने साहित्य में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिपेक्ष्य में स्त्री की स्थिति एवं संघर्ष को चित्रित किया है। इस दिशा में समकालीन महिला लेखिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

नारी-विषयक इन समकालीन महिला उपन्यासकारों का निष्कर्ष यह है कि स्त्री चाहे भारत की हो या अमेरिका की, उच्च वर्ग की हो या निम्न वर्ग की, पुरुष द्वारा श्रम और सेक्स दोनों रूपों में देह-शोषण उसकी नियति है। फिर नारी-मुक्ति की दिशा क्या हैं ? यह सवाल इन समस्त महिला लेखिकाओं के सामने हैं ? इसी प्रश्न के इर्द-गिर्द उपन्यासों की कथा घूमती रहती है। कभी यह मुक्ति उग्र नारीवाद के रूप में दिखाई देती है जहाँ स्त्रियाँ पुरुष से ही मुक्ति चाहती है, कहीं यह मुक्ति नारी के उस रूप स्वाभिमान और स्वाबलम्बन के मार्ग में जहाँ वह आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से अपने पैरों पर पूरी तरह से खड़ी रहकर भी अपना संतुलन नहीं खोती और उन मूल्यों की रक्षा करती है जो मनुष्य मात्र को सहज जीवन प्रदान करता है। ऐसी स्त्रियाँ पुरुष से मुक्ति नहीं चाहती बल्कि पुरुष के वर्चस्व से मुक्ति चाहती हैं। स्त्री-विमर्श के संदर्भ में समकालीन महिला-लेखिकाओं में मैत्रेयी पुष्पा का विशेष स्थान है। लगभग एक दशक के लेखन-काल में ही 'बेतवा बहती रही', इदन्नमम, अल्मा कबूतरी, विजन, आगनपाखी, कस्तूरी कुंडल बसै, चाक, झुलानट, कहैं ईसूरी फाग, एवं त्रिया-हठ जैसे अभिभूत कर देने वाले सशक्त उपन्यासों का सर्जन कर

लेखिका ने अपनी अद्भुत रचनाशीलता का परिचय दिया है। उल्लेखनीय बात यह है कि कम समय में इतना लिखने के बाद भी उनकी प्रत्येक कृति ने पाठकों को संतुष्ट किया है। और नारीवादी दृष्टिकोण को एक नई दृष्टि प्रदान की है। 'बेतवा बहती रही, के बाद आये 'इदन्नमम' उपन्यास ने जहाँ 'लगभग क्लासिक' टिप्पणियाँ अर्जित की है, वहीं 'कस्तूरी कुंडल बसै' ने आत्मकथा साहित्य को कई दृष्टियों से संपन्न किया है।

अपेक्षाकृत कम समय में इतने अधिक लेखन से यह सिद्ध होता है कि मैत्रेयी पुष्पा के पास अनुभवों का व्यापक संसार है। उनकी आत्मकथा कृति 'कस्तूरी कुंडल बसै' से यह बात प्रमाणिक होता है कि उन्हें समाज को, अपने परिवेश को एवं उसके विभिन्न रूपों को देखने का पर्याप्त अवसर मिला है, और वह भी किसी प्रतिक्रिया विहीन दर्शन की तरह नहीं, बल्कि उसमें शामिल होकर उसके अच्छे-बुरे से प्रभावित होते, उससे जूझते और अपने अस्तित्व को तलाशते हुए व्यक्ति की तरह उन्होंने अपनी संवेदना संचित की है। इस अनुभव में वह खुद भी है और उनके आस-पास की पूरी दुनिया भी है। यही कारण है कि इनके द्वारा रचा गया कथा-संसार पाठक को अपना सा लगता है। संवेदना के रूप में सिंचित यह विपुल भंडार एक के बाद दूसरी कथाकृति का कथानक बनता गया है।

'विजन' उपन्यास को छोड़कर मैत्रेयी पुष्पा के प्रायः सभी उपन्यासों की कथाभूमि ग्रामीण है। यह भूमि उनकी जानी पहचानी ही नहीं, बल्कि उनके संवेदनों में रची-बसी है, इसलिए वह पूरी निजता एवं प्रमाणिकता के साथ इस समाज को अंतरंगता और संपूर्णता में देखने में और अभिवयक्त करने समर्थ हो सकी है।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने सभी उपन्यासों में यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि पुरुष-प्रधान समाज ने स्त्री की अस्मिता को कुचलने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। 'चाक' उपन्यास में एक ऐसी विधवा स्त्री की कथा है जो जीवन के अंतिम समय तक पुरुष-सत्ता के शिकंजे में फँसी तिल-तिल कर मिटती रही। उसकी देह एवं उसकी इच्छाएँ पुरुषों के अधीन हैं, जिन्हें पुरुषों के द्वारा समय-समय पर खत्म किया गया। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की भावभूमि स्त्री-जीवन पर केंद्रित होकर भी अत्यंत व्यापक है। 'बेतवा बहती रही', 'अगनपाखी', 'चाक', 'कस्तूरी कुंडल बसै', 'इदन्नमम' इत्यादि उपन्यास विधवा समस्या, अनमेल विवाह,

बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, कन्यावध, कन्या-विक्रय, यौन शोषण इत्यादि समस्याओं पर आधारित है। अंतर सिर्फ इतना है कि जहाँ 'बेतवा बहती रही' की उर्वशी पुरुष के शोषण को चुपचाप सहन करती रही, वही 'अगनपाखी' की भुवन, 'चाक' की रेशम, इदन्नमम' की प्रेमा एवं कुसमा अपने जीवन, अपनी इच्छाओं एवं अपने अस्तित्व को महत्त्व देकर पुरुष-वर्चस्व के खिलाफ विद्रोह ही नहीं करती बल्कि जर्जर धार्मिक एवं सांस्कृतिक रुढ़ियों को तोड़ती भी है।

मैत्रेयी पुष्पा के अंदर सारंग, मंदा, कुसुसा, अल्मा, कस्तूरी एवं डॉ. आभा जैसी अनेक स्त्रियाँ मौजूद हैं, जो पुरुषसत्ता के शिकंजे फंसे रहकर भी अपने अस्तित्व के लिए अंत तक संघर्ष करती हैं । मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों के मूल में पुरुष प्रधान मूल्यों वाले पारंपरिक समाज में व्यक्तित्त्व तो दूर अस्तित्व से भी वंचित स्त्री की करुण स्थिति है और इसी के बीच से उभरती स्त्री के संकल्पों की दृढ़ता भी देखी जा सकती है। इनके उपन्यासों में मानवीय अनुभवों का इतना व्यापक स्वरूप है कि वह किसी एक क्षेत्र या गाँव का ही कथानक नहीं रह जाता, बल्कि यह भारत का कोई भी गाँव हो सकता है, जहाँ रुढ़िबद्ध संस्कार हैं, जातियों का ऊँच-नीच है, सामंती मूल्य हैं, जड़ता है, अशिक्षा और गरीबी है, समाज में नई व्यवस्थाओं का धीमा प्रवेश है और जीवन के विविध अभावों में उल्लास के अवसरों का विधान करती हुई जिजीविषा है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में ब्राह्मणवादी-सामंतवादी, पूंजीवादी, बौद्धिक-सांस्कृतिक रचनाओं के परिवर्तनकारी, प्रतिरोध के लिए वंचित उत्पीड़ित समूहों, आदिवासी, दलित, पिछड़ी जाति की स्त्रियों के दुख को उन्मुक्त और सक्रिय करने पर बल दिया है। इनके 'चाक' उपन्यास में स्त्री का संघर्ष दरअसल एक ऐसी समाज व्यवस्था के लिए संघर्ष है जिसमें बराबरी हासिल करने की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियाँ मौजूद हो। ऐसा समाज एक सामंतवादी समाज ही हो सकता है, जो व्यक्तिगत संपत्ति और वर्ग-विभाजन को समाप्त करेगा। जिसमें स्त्री का परिचय केवल घर में उनकी भूमिका से न होकर, समाज में उसके योगदान से होगा। इसके लिए स्त्री को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनना पड़ेगा।

इतिहास साक्षी है कि पुरुष ने स्त्री को जिन दो मोड़ों पर लगातार कुचला है, उनमें से एक अर्थ और दूसरा सेक्स है। मैत्रेयी पुष्पा ने अविवाहित, तलाकशुदा एवं विधवा स्त्रियों के जीवन पर विचार करते

हुए अनेक सवाल उठाए हैं। लेखिका का मानना है कि घर की व्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था, दोनों ही में स्त्रियाँ हाड़-तोड़ मेहनत-मुशक्कत कर बराबर का योगदान देती हैं। आर्थिक दृष्टि से पुरुष से बराबरी करने के पीछे उनके श्रमशील व्यक्तित्व की भूमिका एक निर्णायक तत्व है, जिसे नजर अंदाज नहीं किया जाना चाहिए।

मैत्रेयी पुष्पा के स्त्री-पात्र राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। साथ ही इनके स्त्री-पात्र अनेक ऐसे सांस्कृतिक अंधविश्वासों एवं धार्मिक सिद्धान्तों को चुनौती ही नहीं देते बल्कि इन खोखली मान्यताओं को तोड़ते भी है जो स्त्री मात्र के प्रति न्याय नहीं करते है। लेखिका ने धार्मिक ग्रन्थों एवं पौराणिक आख्यानों पर भी प्रश्न उठाया है, साथ ही इन ग्रंथों को पुर्नव्याख्याति करने पर भी बल दिया है।

अंततः कहा जा सकता है कि स्त्री-विमर्श की दृष्टि से मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास अपनी ऊपरी सादगी और सरलता के बावजूद बेहद जटिल और संशलिष्ट है। इनका उपन्यास जहाँ एक ओर स्त्रियों और वंचितों की संघर्ष-कथा हैं वहीं उनमें स्त्री का आत्मसंघर्ष भी है। इनके उपन्यास आंचलिक संदर्भों में उभरती नारी-चेतना के आख्यान होने के साथ ही साथ भारतीय उपन्यास की एक समर्थ कड़ी है। इनके उपन्यास ग्रामीण परिवेश में जी रही स्त्री की पीड़ा और उसके मन की सार्थक पहचान एवं नयी जमीन की तलाश हैं, जो फणीश्वरनाथ रेणु से आगे मगर उल्लेखनीय एवं अपने ढंग के अलग तरह के उपन्यास है। लेखिका ने सूक्ष्म एवं पारदर्शी भाषा का प्रयोग किया है। इसी कारण मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास पिछले वर्षों में 'स्त्री-विमर्श' की दृष्टि से प्रकाशित उपन्यासों से पृथक एवं विशिष्ट होने के साथ हिंदी साहित्य आलोचकों के साथ-साथ आम पाठक की भी पसंद बने हैं।

निष्कषत: कहा जा सकता है की मैत्रेयी पुष्पा ने अपने 'चाक' के साथ साथ अन्य उपन्यासों में भी स्त्री की वेदना का जिक्र करते हुए उसी के माध्यम से पुरुषसत्ता समाज में प्रतिरोध के स्वर को उद्घाटित करने में सफल रही है। उनकी दृष्टि स्त्री के प्रति सभी उपन्यासों में सम्यक रही है।

संदर्भ :-

1. सामाजिक विमर्श के आईने में 'चाक' विजय बहादुर सिंह, पृ. 121

2.चाक, मैत्रयी पुष्पा, पृ- 31

3.चाक, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 225

4.चाक, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 225

5.चाक, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 308

6.चाक, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 309

7. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 69

8.चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 70

9.चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 19

10.चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ.19

11.चाक, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 140

12.चाक, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 133

13.चाक, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 156

14.चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 265

15.चाक, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 314

16.चाक, मैत्रयी पुष्पा, पृ. 327

17.स्त्री अस्मिता, साहित्य और विचारधारा, चंदा सदायत, पृ. 198

18.हिंदी पर्यायवाची कोष, डॉ भोलानाथ तिवारी, पृ. 15

19.विमर्श के विवध आयाम, डॉ अर्जुन चौहान, पृ.18

20.विमर्श के विवध आयाम, डॉ अर्जुन चौहान, पृ.19

21.चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ.19

22.चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ.100

23.समकालीन हिंदी उपन्यास, डॉ सूरज पालीवाल, पृ.132

24.महिला उपन्यासकार, डॉ. मधु संधु, पृ.119

25.चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ.100

26.चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ.33

27.चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ.48

28.मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' में विमर्शवादी मीमांसा की संकल्पना, डॉ किरण, पृ.30

29.स्मृतियाँ जगाने लगी, स्त्री का चेहरा बदलने लगा, मैत्रेयी पुष्पा, हंस, जनवरी 1999 पृ.115

उपसंहार

मैत्रेयी पुष्पा बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक में तेजी से उभर कर संपूर्ण हिंदी साहित्यिक परिदृश्य पर छा जाने वाली प्रमुख उपन्यासकार की श्रेणी में आती है। उनकी प्रतिभा बहुयामी है और उनका रचना साहित्य विस्तृत है । मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों को स्त्री जीवन का प्रतिबिंब कहा जाता है । प्रत्येक साहित्यकार अपने समाज में जो कुछ देखता है उसे ही कल्पना का साहारा लेकर साहित्यिक रूप देता है। मैत्रेयी पुष्पा ने भी अपने परिवेश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों को देखा समझा और जीवन के सभी घटनाओं को विशेषकर स्त्री जीवन से जुड़ी समस्याओं का वर्णन बड़ी ही कुशलतापूर्वक अपने साहित्य में किया। मैत्रेयी पुष्पा का जीवन ग्रामीण परिवेश में बिता है इसलिए उन्होंने ग्रामीण जीवन और उसकी व्यवस्थाओं की गहराई में उतरकर ग्रामीण जीवन के अछूते आयामों से हिंदी साहित्य के पाठकों को परिचित कराया । उनके लेख में सूक्ष्मता और अनुभूति की गंभीरता विद्यमान है। उन्होंने स्त्री जीवन की समस्याओं को बेबाकी एवं स्पष्ट बयानी के साथ वर्णन किया है। अपने बेबाकी के कारण वे विवाद स्पंद भी बनी रही साथ ही उन्हें यौन शोषण एवं स्वछंददेह विलास के प्रसंगों को तीव्रता देने वाला साहित्यकार कहा गया। बचपन में वे स्वयं यौन शोषण की शिकार रह चूकी हैं इसलिए उनकी रचनाओं में यौन शोषण की प्रमुखता दिखाई पड़ती है । इनकी रचनाओं की स्त्री पात्र मर्यादा, परंपरा और रुढ़ियों के बंधन में बंधी है एवं उससे मुक्ति चाहती है। उन्होंने स्त्री पात्रों के माध्यम से पितृसत्तात्मक द्वारा स्त्री शोषण के लिए बनाए गए पारंपरिक रुढ़ियों को तोड़ा है।

साहित्य में स्त्री जीवन का अध्ययन बींसवी शताब्दी की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। आधुनिक काल से पूर्व स्त्री जीवन साहित्य में गौण रूप में मौजूद थी । स्त्री के जीवन की अपेक्षा उसके सौंदर्य का वर्णन ही प्रचीन कवियों ने किया। स्त्री को केवल भोग विलास की वस्तुमात्र समझा गया। मनुष्य होने का अधिकार उसे नहीं दिया गया। उसका कोई स्वतंत्र व्यक्तित्त्व नहीं था वह जन्म से मृत्यु तक पुरुष के अधीन ही रहती। कभी बेटी बन कर, कभी पत्नी बन कर तो कभी माता बन कर। वहीं साहित्य में उसे कभी माया, छलनी, नरक वासनी कहा गया तो कभी उसके नख-शिख सौंदर्य का वर्णन कर राजाओं का विलास वस्तु बनाया

गया। वह काम की देवी कामनी मानी गई। उसके अलावा उसका कोई स्वतंत्र व्यक्तित्त्व रहा ही नहीं। उसके वास्तविक जीवन और उसकी समस्याओं पर किसी कवियों ने ध्यान दिया ही नहीं।

आधुनिक काल में आकर साहित्य में स्त्री के इस रूप में परिवर्तन देखने को मिला। जहाँ एक ओर विभिन्न समाज सुधारकों ने स्त्री की दशा के सुधार के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किये, वहीं दूसरी ओर विभिन्न साहित्यकारों ने स्त्री दशा पर विभिन्न रचनाएँ लिखी। इन रचनाओं में स्त्री की समस्याओं को उठाया गया। स्त्री जीवन पर आधारित उपन्यास और कहानी लिखी गई। इसमें स्त्री शिक्षा, बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, अनमेल विवाह, सती-प्रथा, वैश्यों आदि की समस्या प्रमुख थी।

स्वतंत्रता के बाद साहित्य में एक बड़ा परिवर्तन देखने को मिला। साहित्य में पढ़ी-लिखी बुद्धिजीवी स्त्रियों ने अपनी कलम चलाई। साहित्य में स्त्री जीवन का वर्णन पहले पुरुषों द्वारा ही होता था अतः स्त्री के लिए यह साहनुभूति का साहित्य था मगर जब स्त्री लेखिकाओं ने अपना कलम इस पर चलाया उनके लिए यह स्वानुभूति का साहित्य था। उन्होंने स्त्री जीवन की दशा का बड़े ही सजीवता और सूक्ष्मता के साथ वर्णन किया। स्त्री की वास्तविक दशा से न केवल लोगों को परिचित कराया बल्कि उसका विरोध भी अपने साहित्य में किया। ऐसे ही स्त्री साहित्यकार के रूप में मैत्रेयी पुष्पा का नाम बड़े ही आदर पूर्वक लिया जाता है।

प्रथम अध्याय : ' स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और मैत्रेयी पुष्पा' पर अध्ययन करने पर मिला की हिंदी उपन्यास का उद्भव मूलतः भारतेंदु युग से माना जाता है। इसके विकास में बंगला और पाश्चत्य उपन्यासों का बहुत हद तक प्रभाव पड़ा। उपन्यास साहित्य सर्वप्रथम अनुवाद के रूप में लिखा गया। बाद में इसकी मौलिक रचना का निर्माण हुआ। शुरुआती दौर में मनोरंजन एवं सुधारपरख उपन्यास लिखे गए। इसके साथ-साथ तिलस्मी, ऐयारी और जासूसी उपन्यास की प्रधानता थी। इसके बाद प्रेमचन्द युग के आगमन के साथ साथ आदर्श एवं यथार्थवादी उपन्यासों की प्रमुखता दिखाई पड़ी। प्रेमचन्द युग से ही उपन्यास मानव जीवन के यथार्थ से जुड़ गया। मानव जीवन की विसंगतियों का वर्णन इसमें किया जाने लगा। मार्क्सवाद के प्रभाव के कारण मार्क्सवादी विचारधारा पर प्रगतिवादी उपन्यास लिखे गए। इसके बाद पाश्चत्य प्रभाव से मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिखे गये। जिसमें मानव मन की चेतन, अचेतन अवस्था को

समझा गया। उपन्यास मानव जीवन से ही नहीं उसके मन से भी जुड़ गया। स्वतंत्रता के बाद आधुनिकता की विभिन्न प्रवृतियाँ जैसे कुंठा, संत्रास, अकेलापन, अजनबीपन आदि पर उपन्यास लिखे गए। आजादी के वक्त देश विभाजन होने के कारण विभाजन पर भी बहुत सारे उपन्यास लिखे गए। उसके बाद स्वतंत्र भारत के विभिन्न समस्याओं पर जनवादी एवं यथार्थवादी उपन्यास लिखे गए। बीसवीं सदी के अंतिम दशकों एवं इक्कीसवीं सदी के शुरुआती दशक में विभिन्न विमर्शो जैसे दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, पर उपन्यास लिखे गए।

इस अध्याय में मैत्रेयी पुष्पा का व्यक्तित्व का विचार करने पर मिला की उनका जन्म ग्रामीण क्षेत्र पर होने के कारण उनकी रचनाओं में ग्रामीण क्षेत्र का वर्णन ज्यादा मिलता है। ग्रामीण क्षेत्र की समस्याओं को उन्होंने स्वयं झेला है, उसको जिया है और उसकी अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं में की है। उनका जीवन हमेशा संघर्षपूर्ण रहा है। विभिन्न समस्याओं को झेलने के बाद उन्होंने खुद को उभारा है। इनके लिखने में इनके परिवेश, प्रकृति एवं भाषा का प्रभाव देखने को मिलता है। इनका कृतित्व क्षेत्र विस्तृत है। इन्होनें उपन्यास, कहानी, नारीविमर्श से संबंधीत लेख लिखे हैं। इनकी लगभग सभी रचनाएँ स्त्री समस्या पर आधारित है। साथ ही अपनी आत्मकथा 'कस्तूरी कुंडल बसै' में बिना किसी हिचक के अपने जीवन की वास्तविकता को लोगों से परिचित कराया है। आज भी स्त्री समस्या पर वे रचनाएँ लिख रही हैं और अपने लेखों से शोषण और अत्याचार पर आवाज उठाती नजर आती हैं।

द्वितीय अध्याय : 'स्त्री जीवन के विविध रूप' का अध्ययन करने पर मिला की 'स्त्री' शब्द पर प्राचीन काल से ही विचार होते आए हैं। 'स्त्री' शब्द को विभिन्न अर्थों से समझने का प्रयास किया गया है। उसे उसके गुणों के आधार पर नारी, महिला, औरत आदि नाम दिए गए हैं। भारतीय स्त्री के प्रचीन स्वरुप में भिन्न था और आज भिन्न है। उसके स्वरूप में परिवर्तन हुआ है। वह पहले की तुलना में आज आधिक स्वतंत्र है। मगर आधुनिकता के कुछ अवगुण भी उनमें आयी है। समकालीन स्त्री पाश्चत्य परिवेश से पूर्णतः प्रभावित होकर भारतीय सांस्कृतिक को नकार रही है। नकारने की यह प्रवृत्ति भारतीय संस्कृति के लिए खतरा साबित हो रही है। इसका परिणाम है कि साहित्य में उत्तर आधुनिकतावाद, भूमंडलीकरण, बाजारवाद आदि का प्रभाव देखने को मिल रहा है। आज समकालीन स्त्री अधिकार के मामले में पुरुष की

बराबरी की माँग कर रही है। और इस बराबरी के लिए वह संघर्षरत है। कई स्थानों पर उन्हें सफलता भी मिली है। स्त्री का अपने अधिकार की माँग सही मगर नकारी की इस प्रवृत्ति से उसे बचने की आवश्यकता है।

तृतीय अध्याय : 'चाक' में वर्णित स्त्री जीवन का अध्ययन करने पर मिला कि ''चाक' मैत्रेयी पुष्पा की बहुचर्चित उपन्यास है। ग्रामीण क्षेत्र के स्त्री जीवन की वास्तविक चित्र इस उपन्यास में उकेरा गया है। उपन्यास की कुछ स्त्री पात्र एक ओर तो शोषण को चुप-चाप सहती है मगर प्रमुख स्त्री पात्र अपने ऊपर हो रहे शोषण का खुलकर विरोध करती है। सारंग और रेशम ऐसी ही पात्र है, जो अन्याय को नहीं सहती तथा डटकर उसका विरोध करती है। 'सारंग' उपन्यास की प्रमुख नायिका है उसका व्यक्तित्व प्रखर है। वह गुरुकुल से पढ़ी-लिखी है। स्त्री को गुलाम बनाने वाली प्रचीन रुढ़ियों का वह खुल कर विरोध करती है। अपने बहन 'रेशम' के हत्यारे डोरिया को सजा दिलाने के लिए हर तरह से प्रयास करती है। उसे सजा नहीं होती और भारतीय न्याय व्यवस्था की सच्चाई हमारे समक्ष आती है। गाँव के चुनाव में कोई योग्य पार्थी न देख वह खुद चुनाव में खड़ी होती है और जीत भी जाती है। स्त्री के सुधार के लिए गाँव के स्त्रियों को जागरूक करती है। उसका यह व्यक्तित्त्व समाज के स्त्रियों को प्रेरणा देने वाला है। 'रेशम' भी ऐसी ही पात्र है जो अपने अधिकार के लिए लड़ती है। समाज के नियमों को वह सीधे सीधे नकारती है। अपने पति के मृत्यु के पश्चात् वह न केवल अन्य पुरुष से संबंध बनाती है बल्कि गर्भवती भी हो जाती है। और उस बच्चे को जन्म देना चाहती है। उसका यह व्यक्तित्त्व समाज को चुनौती देती नजर आती है। समाज के खिलाफ उठाया गया इतना बड़ा कदम उसे जान देकर चुकानी पड़ती है। परंपरा और रूढ़ियों से जकड़े इस समाज को यह दोनों पात्र यह सन्देश देती है कि अन्याय के खिलाफ उन्हें कदम उठाना होगा। परंपरा के नाम पर बनाई गई यह रूढ़ियाँ वास्तव में पुरुषसत्तात्मक समाज द्वारा स्त्रियों को गुलाम बनाने की साजिश है।

'चाक' उपन्यास में कुछ स्त्री पात्र ऐसी है जो पारंपरिक रूढ़ियों के इस विरोध के कारण जान गँवाती है। पंचान्न बीबी को प्रेम करने की सजा दी जाती है जो हमारे आदर्श समाज और महान संस्कृति पर प्रश्न चिह्न खड़ा करती है। वैवाहिक संस्थाओं पर बदलती आर्थिक स्तिथियों के प्रभाव के साथ यौन

संबंध, महिला के अधिकार, शिक्षा व्यवस्था में स्त्री का प्रवेश का आकलन भी किया है। वही रेशम की हत्या अपने स्वतंत्रता के लिए उठाने वाले उन लाखों स्त्रियों की हत्या है। सारंग की तरह सभी स्त्री को अपने अधिकार के लिए शुरू से अंत तक लड़ना होगा। सारंग के आवाज को जैसे दबाया गया मगर अंत तक वह हार नहीं मानी। स्त्री को 'चाक' उपन्यास की पात्रो की तरह लड़ना होगा तभी उसे अपना अधिकार प्राप्त होगा।

चतुर्थ अध्याय : ''चाक' में चित्रित स्त्री एवं मैत्रेयी पुष्पा की रचना दृष्टि' का अध्ययन करने पर मिला की स्त्री जीवन में बहुत तरह की वेदना है। उसका जीवन वेदना से जुड़ा हुआ है। वह जन्म से ही बेटी, बहन, पत्नी, माता के रूप में दुःख सहती है। चाक में भी स्त्री के इन रूपों का वर्णन मिलता है। सारंग और रेशम भले इससे लड़ती है, मगर उसे स्त्री होने का सजा भुगतना पड़ता है। प्रतिरोध करती यह स्त्री उपन्यासकार की ऐसी आधुनिक पात्र है जिनके द्वारा ही स्त्री न्याय मिल सकता है। सारंग का चुनाव लड़ना स्त्री का घर परिवार के अलवा अपना स्वतंत्र व्यक्तित्त्व कायम करना है। स्त्री को घर परिवार के इस बंधन से निकलना होगा। आर्थिक रूप से स्वयं को मजबूत बनाना होगा तभी वह समाज में बराबरी का अधिकार पा सकती है। परंपरा के साथ-साथ आधुनिकता के कारण स्त्री जीवन में परिवर्तन आया है। यही परिवर्तन उसके चेतना में सहायक है । मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की भावभूमि स्त्री-जीवन पर केंद्रित है । 'बेतवा बहती रही', 'अगनपाखी', 'चाक', 'कस्तूरी कुंडल बसै', 'इदन्नमम' इत्यादि उपन्यास विधवा समस्या, अनमेल विवाह, बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, कन्यावध, कन्या-विक्रय, यौन शोषण इत्यादि समस्याओं पर आधारित है। मैत्रेयी पुष्पा के प्रत्येक उपन्यास आरम्भ से लेकर अंत तक स्त्री की पीड़ा और उसके संघर्ष को व्यक्त करता है। लेखिका ने अपने उपन्यासों में स्त्री पीड़ा और इस पीड़ा से जागृत अस्तित्वबोध के चलते स्त्रियों के संघर्ष को अत्यन्त मार्मिक ढंग से उद्घाटित किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' उपन्यास में स्त्री जीवन का सजीव वर्णन मिलता है। ग्रामीण क्षेत्र में स्त्रियों का शोषण भिन्न-भिन्न रूप में होता है। उपन्यास में विवाह, प्रेम, दहेज, अनैतिक संबन्ध, यौन शोषण आदि समस्या की प्रमुखता है। इस उपन्यास की प्रमुख पात्र शोषण दमन सहने वाली नहीं है । वह अपने अधिकार के लिए पारंपरिक रूढ़ियों के खिलाफ आज उठती है ।

पुरुषसत्तात्मक समाज को चुनौती देती है और उसके द्वारा बनाए गए रूढ़ियों को वह नकारती है। इस उपन्यास में सारंग और रेशम जैसे पात्रों द्वारा अन्याय और अत्याचार का विरोध इस बात का प्रमाण है कि स्त्रियों को अपने शोषण और अत्याचार पर खुद आवाज उठानी होगी। भाग्य भरोसे बैठ कर कभी उसकी दशा में सुधार नहीं आ सकता है। स्त्री को अपने आधिकार और अस्तित्त्व को पहचना होगा, तभी वह अपनी दशा में सुधार ला सकती है। 'चाक' इन्हीं बिन्दुओं पर घुमती बीसवीं शताब्दी की सर्वेश्रेष्ठ उपन्यास है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रन्थ:-

1. पुष्पा, मैत्रेयी, **चाक**, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004 ई.

सहायक ग्रंथ:

1. अनामिका, **स्त्री-विमर्श की उत्तर-गाथा,** सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012 ई.

2. अनामिका, **स्त्री-विमर्श का लोकपक्ष,** वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012 ई.

3. कस्तवार, रेखा, **स्त्री-चिंतन की चुनौतियाँ,** राज कमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006 ई.

4. डॉ.कार्कट, बाबा साहेब, **हिन्दी साहित्य में महानगरीय नारी जीवन,** समता प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2003 ई.

5. कटारिया, कमलेश, **नारी जीवन वैदिक काल से आज तक,** अमर प्रकाशन, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, 2009 ई.

6. कुमार, भास्कर, **भूमंडलीकरण और स्त्री,** संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008 ई.

7. कुमारी, सुमन, **समाज और साहित्य, नारीवादी अवधारणा,** श्रीनटराज प्रकाशन, दिल्ली, नवीन संस्करण 2014 ई.

8. खेतान, प्रभा, **स्त्री उपेक्षिता,** हिन्दी पोकेट्स बुक्स, दिल्ली, 1988 ई.

9. खेतान, प्रभा, **उपनिवेशमें स्त्री: मुक्तिकामना की दसवार्ताएँ**, राज कमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003 ई .

10. गुप्ता, रमणिका, **स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास,** सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012 ई.

11. चतुर्वेदी, जगदीश्वर, **साहित्य का इतिहासदर्शन,** अनामिका प्रकाशन, दिल्ली,

प्रथम संस्करण , 2013 ई.

12. चतुर्वेदी, जगदीश्वर, **स्त्रीवादी साहित्य विमर्श,** अनामिका पब्लिशस एंड दिस्तीबुटर लिमिटेड,

नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011 ई.

13. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, **साहित्य संवेदना का विकास,** लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,

पहला संस्करण, 2002 ई.

14. डॉ.जलील, अब्दुल, **समकालीन हिन्दी उपन्यास समय और संवेदना,** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,

प्रथम संस्करण,2006 ई.

15. जैन, अरविन्द, **औरत अस्तित्व और अस्मिता,** राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,पहली आवृत्ति, 2013 ई.

16. झाल्टे, दंगल, **नये उपन्यासों में नये प्रयोग,** प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1994 ई.

17. तिवारी, रामचंद्र, **हिन्दी का गद्य साहित्य,** विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण,

2014 ई.

18. दुबे, अभय कुमार (सं.), **भारत का भूमंडलीकरण,** वाणी प्रकाशन, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, 2003 ई.

19. दुबे, शयमाचरण, **भारतीय समाज,** नेरानल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, पहला संस्करण, 1999 ई.

20. दीक्षित, दया (सं.), **मैत्रेयी पुष्पा: तथ्य और सत्य,** सामयिक बुक्स , नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013 ई.

21. डॉ. पटेल, कल्पना, **मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में अभिव्यक्ति समाज,** चिंतन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2014 ई.

22. पुष्पा, मैत्रेयी, **तबदील निगाहें,** किताब घर प्रकशन, नई दिल्ली,प्रथम संस्करण,2006 ई.

23. पुष्पा, मैत्रेयी, **मेरे साक्षात्कार,** किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010 ई.

24. पुष्पा, मैत्रेयी, **सुनो मालिक सुनो,** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006 ई.

25. डॉ. बालसुब्रमण्यम, सी, **मैत्रीय पुष्पा पाश्र्वीकृतों के पैरोकार,** जवाहर पुस्तकालय प्रकाशन, मथुरा, प्रथम संस्करण 2012 ई.

26. मधुरेश, **हिदी उपन्यास का विकास,** लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, 2008 ई.

27. डॉ.यादव, उषा, **हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना,** राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण,1999 ई.

28. यादव राजेन्द, **उपन्यास : स्वरूप और संवेदना,**वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,प्रथम संस्करण,1997 ई.

29. डॉ. वार्ष्णेय लक्ष्मीसागर , **स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास,** राजपाल एंड सन्ज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012 ई.

30. शर्मा, कुसुम, **साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास विविध प्रयोग**, श्याम प्रकाशन, जयपुर, प्रथम प्रकाशन 1990 ई.

31. डॉ. शर्मा, जानकी प्रसाद, **उपन्यास एक अंतयात्रा,** यश पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010 ई.

32. शर्मा, क्षमा, **स्त्रीत्ववादी विमर्श समाज और साहित्य,** राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,

दूसरी आवृत्ति 2012 ई.

33. सिंह, लालसाहब, **स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में युगबोध**, अभय प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2005 ई.

34. सिंह विजय बहादुर, **सामाजिक विमर्श का आईने में चाक,** राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण, 2014 ई.

पत्र-पत्रिकाएँ

1. आलोचना, अक्टूबर-दिसंबर-2012, दिल्ली

2. कर्णामृत, जनवरी-मार्च-2009, आर्ट प्रेस कोलकाता

3. पाठ, अप्रैल-जून-2012, बिलासपुर (छ.ग.)

4. वर्तमान साहित्य, अप्रैल-2012, राम घाट रोड अलीगढ़

5. शोध दिशा-18, अप्रैल-जून-2012, बिजनौर (उ.प्र.)

6. समकालीन भारतीय साहित्य, सितम्बर-अक्टूबर-2005, साहित्य अकादमी, दिल्ली

7. हंस, अप्रेल-1997, दिल्ली